सर्वहारा दृष्टिकोण

सोशलिस्ट यूनिटी सेन्टर ऑफ इण्डिया (कम्युनिस्ट) का मुखपत्र (पाक्षिक)

वर्ष-29 अंक-22 22 नवम्बर से 6 दिसम्बर, 2014 मुख्य संपादक - कॉमरेड कृष्ण चक्रवर्ती मूल्य : 2 रुपये

महान नवम्बर क्रान्ति की 97वीं वर्षगांठ पर
दिल्ली में विशाल जनसभा

नई दिल्ली : महान नवम्बर क्रान्ति की 97वीं वर्षगांठ मनाने के लिए शहीद भगत सिंह पार्क के नजदीक फिरोजशाह कोटला मैदान में 15 नवम्बर को एसयूसीआई (कम्युनिस्ट), दिल्ली राज्य सांगठनिक कमेटी द्वारा आयोजित जनसभा में पार्टी के सैकड़ों कार्यकर्ता, समर्थक, हमदर्द और जीवन के विभिन्न तबकों के लोग शामिल हुए। नवम्बर क्रान्ति 1917 में रूस में हुई थी और पूँजीवादी गुलामी की जंजीरों को तोड़ कर धरती पर पहला समाजवादी राज्य कायम किया था। कार्यक्रम की शुरूआत शहीद भगत सिंह, राजगुरू व सुखदेव की प्रतिमाओं पर माल्यार्पण, उद्धरण प्रदर्शनी और क्रान्तिकारी गीत-संगीत के सांस्कृतिक कार्यक्रम से हुई। लेनिन पर रचित प्रसिद्ध गाने के बाद जनसभा शुरू हुई।

दिल्ली के फिरोज शाह कोटला में सभा को सम्बोधित करते हुए कॉ. माणिक मुखर्जी

पार्टी के पोलिट ब्यूरो सदस्य कॉमरेड माणिक मुखर्जी ने मुख्य वक्ता के तौर पर सभा को सम्बोधित किया। पार्टी के दिल्ली राज्य सचिव कॉ. प्रताप सामल ने भी सभा को सम्बोधित किया। पार्टी के दिल्ली राज्य सचिवमण्डल सदस्य कॉ. प्राण शर्मा ने पार्टी के पोलिट ब्यूरो सदस्य और दिल्ली राज्य प्रभारी कॉमरेड कृष्ण चक्रवर्ती का संदेश पढ़ कर सुनाया। कॉ. चक्रवर्ती अस्वस्थ होने के कारण आ नहीं पाये ओर कोलकाता में उनका इलाज चल रहा है। सभा की अध्यक्षता पार्टी के केन्द्रीय कमेटी सदस्य कॉमरेड सत्यवान ने की।

कॉ. माणिक मुखर्जी ने कहा कि नवम्बर क्रान्ति महज इसलिए ही महत्वपूर्ण नहीं है कि यह पहली क्रान्ति थी जिसने पहला मजदूर राज कायम किया था, बल्कि इसलिए भी कि इसने मार्क्सवाद के यांत्रिक अनुगामियों के कठमुल्लावादी विचारों पर करारा प्रहार किया था कि जब तक पूँजीवाद आर्थिक तौर पर सामंतवाद का पूरी तरह सफाया नहीं कर देता तब तक समाजवादी क्रान्ति नहीं की जा सकती। लेनिन ने अपनी प्रसिद्ध कृति *'अप्रैल थीसिस'* में दिखाया कि क्रान्ति का मूल प्रश्न राज्यसत्ता से जुड़ा हुआ है अर्थात् राज्यसत्ता में कौन सा या कौन-कौन से वर्ग हैं और कौन से या किन-किन वर्गों ने राज्यसत्ता से शासक वर्ग को उखाड़ फेंकना है और किस वर्ग की मदद से। लेनिन ने अपनी प्रसिद्ध कृति *'साम्राज्यवाद पूँजीवाद की चरम अवस्था'* में यह भी दिखाया कि साम्राज्यवाद अपनी वर्तमान मरणासन्न अवस्था में इन कामों को करने में असमर्थ है। इसलिए मजदूर वर्ग की जिम्मेदारी बनती है कि क्रान्ति के बाद समाजवादी निर्माण के कार्यक्रम में पूँजीवाद के इन अधूरे छोड़े हुए कामों को शामिल करे। मार्क्सवाद की इस रचनात्मक समझदारी ने न केवल रूसी पूँजीपति वर्ग के प्रतिनिधि केरेन्स्की की सरकार को प्राणघातक प्रहार किया था बल्कि विश्व पूँजीवाद-साम्राज्यवाद से चौतरफा प्रतिक्रिया के सम्मुख धरती पर पहला समाजवादी राज्य भी स्थापित किया था। मार्क्सवाद की इस समझदारी ने एनईपी, सहकारिता, सामूहिकीकरण, स्टेट फार्मिंग और उद्यमों के उपायों के जरिये समाजवादी अर्थव्यवस्था के द्रुत व सतत विकास की ओर भी अग्रसर किया था और उस समय मौजूद अत्यंत विकसित पूँजीवादी देशों को विकास के मामले में पीछे छोड़ दिया था। इसने सामाजिक प्रगति के द्वार खोल दिये थे।

कॉमरेड सत्यवान ने अपने अध्यक्षीय भाषण में पूँजीवादी भूमण्डलीकरण, निजीकरण और भारतीय अर्थव्यवस्था को विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के लिए खोलने की जनविरोधी नीतियों के जरिये हो रहे आर्थिक हमले के खिलाफ जनवादी व धर्मनिरपेक्ष आन्दोलनों में मेहनतकश जनता को संगठित करने की जरूरत पर बल दिया। जनसाधारण के सांसकुतिक स्तर और वर्ग चेतना को ऊंचा उठाने की भी बात कही।

अंतराष्ट्रीय गान के साथ कार्यक्रम का समापन हुआ।

कश्मीर में फौज की गोली से निरीह युवकों की हत्या की कड़ी निन्दा

एसयूसीआई(कम्युनिस्ट) के महासचिव कॉमरेड प्रभाष घोष ने 9 नवम्बर को जारी एक बयान में कहा कि मिलिटरी की गोली से कश्मीर के बेकसूर युवकों की हत्या का हम कड़ा प्रतिवाद जताते हैं। सेना के अधिकारियों द्वारा गलती मानने और मृतकों के परिवारों को मुआवजा देने की घोषणा इस निर्मम हत्याकाण्ड की सान्त्वना नहीं हो सकती। इसी तरह लम्बे अर्से से अलगाववादियों और उग्रवादियों को दबाने के नाम पर सेनावाहिनी कश्मीर, मणिपुर में नरसंहार, सामूहिक बलात्कार और बर्बर अत्याचार करती आ रही है और आर्मड फोर्सेज स्पेशल पावर एक्ट (आफस्पा) को ढाल के तौर पर इस्तेमाल कर रही है। यह दमन-उत्पीड़न अलगाववादियों और उग्रवादियों को वस्तुतः आग में ईंधन जुटा रहा है।

हम हत्यारों को सख्त सजा देने और अफस्पा को तुरन्त वापस लेने की मांग करते हैं।

महिलाओं पर अत्याचार के खिलाफ विक्षोभ प्रदर्शन

भोपाल : महिलाओं पर बढ़ते अत्याचार के खिलाफ ऑल इण्डिया महिला सांस्कृतिक संगठन की मध्य प्रदेश राज्य कमेटी के बैनर तले महिलाओं ने 10 नवम्बर को यहां शाहजहाँनी पार्क में शुरू

(शेष पृष्ठ 8 पर)

आशा कर्मियों का विशाल प्रदर्शन

नई दिल्ली : ऑल इण्डिया यूटीयूसी से सम्बद्ध दिल्ली आशा वर्कर्स एसोसियेशन (डीएडब्ल्यूए) की तरफ से अपनी 20 सूत्री मांगों को लेकर सैकड़ों आशा वर्कर मोरीगेट पर एकत्रित हुई और जुलूस निकाला। उपराज्यपाल कार्यालय पर जोरदार धरना-प्रदर्शन किया गया। इसमें शामिल हुई।

उपराज्यपाल को सौंपे गये ज्ञापन में उन्हें सरकारी कर्मचारी का दर्जा देने, इन्सेन्टिव नहीं वेतन देने, स्टेशनरी, मोबाइल, यात्रा भत्ता व वर्दी देने, 5 साल की अनुभवी आशा को एएनएम बनाया जाने, हर अस्पताल में आशा काउन्टर व आशा रूम बनाये जाने और तुरन्त प्रभाव से इन्सेन्टिव दो गुना करने की मांग की गई। ऑल इण्डिया यूटीयूसी के राष्ट्रीय सचिव कॉमरेड आर के शर्मा, एसोसियेशन की महासचिव ममता राव व अध्यक्ष कॉमरेड मैनेजर चौरसिया के अलावा निर्देश, शिक्षा, राजबाला, रेखा, निर्मल, कविता, रेणु, अंजू, सोनू ने सभा को सम्बोधित किया।

भोपाल : महिलाओं पर बढ़ते अत्याचार के खिलाफ रोष का इजहार करती महिलाएं

प्रेमचंद-शरतचंद्र स्मृति समारोह सम्पन्न

जमशेदपुर (झारखण्ड) : 2 नवम्बर को टाउन हॉल में प्रेमचंद-शरतचंद्र स्मृति समारोह भव्य तरीके से मनाया गया। इस मौके पर जमशेदपुर के विभिन्न स्कूल-कॉलेज से हजारों की संख्या में विद्यार्थी, अभिभावक, साहित्यकार, रंगकर्मी, कलाकार एकत्रित हुए थे। सभा की अध्यक्षता लोक सांस्कृतिक चेतना मंच के अध्यक्ष व विशिष्ट साहित्यकार नंद कुमार उन्मन ने की। सभा का संचालन मंच के सचिव सुमित राय ने किया।

प्रेमचंद-शरतचंद्र के साहित्य व जीवन-संग्राम पर आयोजित व्याख्यान में डॉ. सुभाष चंद्र गुप्ता, प्रोफेसर मित्रेश्वर, श्यामल सुमन, सुमित राय ने अपना वक्तव्य रखा। प्रधान अतिथि के रूप में उपस्थित थे प्रभात खबर पत्रिका के संपादक श्री रंजीत सिंह।

वक्ताओं ने कहा कि भूमंडलीकरण, और एफडीआई के दौर में विदेश से सिर्फ पूंजी नहीं बल्कि सांस्कृतिक प्रदूषण का भी आयात हो रहा है। खुदगर्जी, भोगवाद, उच्छृंखलता, अपराध, भ्रष्टाचार तेजी से बढ़ रहा है। परिवार टूट रहा है, शादियां टूट रही हैं, आत्यमहत्याओं और मानसिक रोगियों की संख्या में तेजी से इजाफा हो रहा है। इस स्थिति में प्रेमचंद-शरतचंद्र का साहित्य एक औषधि के रूप में काम कर सकता है। उन्नत मानवतावादी मूल्यबोध, मातृत्व-पितृत्व का मर्म, विभिन्न रिश्तों और जज्बातों का ताना-बाना, सामाजिक जिम्मेवारीबोध और सर्वोपरि सत्य के प्रति गहरी निष्ठा, निर्धन और बेसहारा लोगों के प्रति अपार प्रेम और अनुराग ऐसी अनमोल चीजें उनकी रचनाओं में उन्नत साहित्यिक और कलात्मक शैली के माध्यम से अभिव्यक्त हुई हैं। इन्हीं कारणों से इन दो महान साहित्यकारों के जीवन-संघर्ष व रचनाओं को समाज के हर वर्ग, खासकर छात्र-नौजवानों के बीच ले जाना चाहिए।

इसके बाद हुए सांस्कृतिक कार्यक्रम में घाटशिला कॉलेज के प्रोफेसर सुबोध सिंह ने बांसूरी वादन किया। अजय राय व स्पार्क की टीम ने कई जनवादी गीत प्रस्तुत किये। घाटशिला डीएसओ व जमशेदपुर की पैरोकार की टीम के गीतों के अलावा श्यामल सुमन, लता प्रियदर्शी व असीत कुंडू ने स्वरचित कविता प्रस्तुत की। इसके बाद विस्थापन का दंश झेल रहे आदिवासी-मूलवासियों के दर्द को बयां करने वाला एक गीत व लोकनृत्य प्रस्तुत किया गया। मंच की ओर से 'शपथ' नाटक खेला गया जिसमें छात्र-नौजवानों की वर्तमान सोच और इस युग के संकट को बखूबी दर्शाया गया। अंत में 12 अक्टूबर को ग्रेजुएट कॉलेज में आयोजित निबंध, चित्रांकण, गीत, क्विज, भाषण और 19 अक्टूबर को धतकीडीह कम्युनिटी सेंटर में आयोजित नाटक प्रतियोगिता के विजेताओ को पुरस्कृत किया गया।

छात्रों ने उठाई आईटीआई में सेमेस्टर सिस्टम वापस लेने की मांग

अमरोहा (उ.प्र) : आईटीआई में सेमेस्टर सिस्टम वापस लेने सम्बन्धी एक ज्ञापन मुख्यमंत्री के नाम 10 अक्टूबर को एआईडीवाईओ की जिला कमेटी द्वारा जिला अधिकारी के माध्यम से भेजा गया। वहां हुई सभा में जिला संयोजक नासिर अली, नौबहार सिंह, इशरार अहमद, राजेन्द्र सिंह, अरविन्द यदुवंशी, पवन भारद्वाज, आयुश श्रीवास्तव, नवाब अली आदि मौजूद थे।

झारखण्ड विधानसभा चुनाव में एसयूसीआई (सी) ने खड़े किये 9 उम्मीदवार

राँची के पुरुलिया रोड स्थित विकास मैत्री भवन में 7 नवम्बर को एसयूसीआई(कम्युनिस्ट) की ओर से एक प्रैस कान्फ्रेंस की गई। इसमें झारखण्ड में होने जा रहे विधानसभा चुनाव में हमारी पार्टी एसयूसीआई (कम्युनिस्ट) की ओर से कुल 9 विधानसभा क्षेत्रों में अपने उम्मीदवार खड़े करने की घोषणा की गई।

एसयूसीआई(कम्युनिस्ट) के राज्य सचिव कॉमरेड रबीन समाजपति ने कहा कि चूँकि झारखण्ड की कुल 81 सीटों में से 9 विधानसभा क्षेत्रों में अपने उम्मीदवार खड़े कर रहे हैं और हम भाजपा-आजसू गठबंधन या झामुमो, कांग्रेस और झाविमो में से किसी भी दल में शामिल नहीं हैं, अत: अगर हमें इस चुनाव में जीत हासिल होती है तो हम विपक्ष में ही बैठेंगे।

उन्होंने कहा कि विधानसभा चुनाव में सत्ता के दावेदार उपरोक्त गठबंधनों में शामिल सभी दलों ने झारखण्ड बनने के बाद से बार-बार सत्ता की बागडोर संभाली है। इसमें पिछले 14 सालों में भाजपा तो अकेले लगभग 10 साल सत्ता में रह चुकी है। कांग्रेस, झामुमो, आजसू इत्यादि पार्टियों में से कोई 3 साल, कोई 5 साल तो कोई उससे भी ज्यादा समय तक सत्ता में या अन्य मंत्री पदों पर बने रहे हैं। लेकिन इसके बावजूद झारखण्ड की स्थिति दिन-ब-दिन बदतर होती चली गई। जिन आदिवासियों-मूलवासियों के कल्याण की बात करते हुए झारखण्ड को एक अलग राज्य के रूप में कायम किया गया, उनके जीवन स्तर में किसी तरह का सुधार आना तो दूर की बात, इसके विपरीत झारखण्ड बनने के कुछ सालों बाद से ही इस राज्य से आदिवासियों का पलायन इतनी भारी संख्या में होने लगा कि आज राज्य में आदिवासियों की संख्या लगभग आधी रह गई है। गरीबों-मूलवासियों और अन्य लोगों की स्थिति भी वही है। झारखण्ड में लगभग हर प्रकार की प्राकृतिक सम्पदाएं भारी मात्रा में उपलब्ध हैं जिनका सरकार द्वारा अगर सही उपयोग किया जाता तो शायद झारखण्ड में गरीबी का नामो-निशान नहीं बचता और राज्य के हरेक व्यक्ति का जीवन स्तर पहले की तुलना में कई गुना बेहतर हो जाता। लेकिन इन सम्पदाओं का उपयोग जनता के हित में करने की बजाय इन्हें देशी-विदेशी बड़े-बड़े पूंजीपतियों के हवाले कर दिया जा रहा है और वे इनका दोहन कर अरबों की सम्पत्ति बना रहे हैं। दूसरी ओर, जिस जमीन के नीचे ये सम्पदाएं मौजूद हैं उस जमीन के मालिकों को अपनी ही जमीनों से हाथ धोकर दर-दर की ठोकरें खाने को मजबूर होना पड़ रहा है। इसके अलावा, राज्य में महिलाओं पर अत्याचार और नारी तस्करी दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। भ्रष्टाचार चरम सीमा पर है। हजारों छोटे-बड़े कल-कारखाने बंद पड़े हुए हैं। इन सबके फलस्वरूप राज्य की जनता गरीब से और भी गरीब होती जा रही है और कुछ भ्रष्ट राजनीतिक नेता, अफसर और बड़े-बड़े पूंजीपति अमीर से और भी अमीर होते जा रहे हैं। सभी राजीतिक दल इन्हीं पूंजीपतियों से करोड़ों रुपये चंदे के रूप में लेकर उनका इस्तेमाल अपने चुनाव प्रचार के दौरान करते हैं और चुनाव जीतने के बाद जनता के दु:ख-तकलीफों को दरकिनार करते हुए उन्हीं पूंजीपतियों की सेवा करने के लिए तत्पर रहते हैं। इन सभी राजनीतिक दलों ने पिछले 14 सालों में सत्ता में रहने के बावजूद राज्य और राज्य की जनता की स्थिति इतनी बदतर बना दी है कि कम से कम अब तो इन दलों को जनता के बीच जाकर वोट मांगने का कोई नैतिक अधिकार भी नहीं है। जनता से हमारी पुरजोर अपील है कि वे इस बारे में जरूर सोचे कि इन दलों ने सत्ता में रह कर किनके कल्याण का काम किया, राज्य के मेहनतकश गरीब मजदूर-किसानों का या फिर बड़े-बड़े पूंजीपतियों का?

दूसरी ओर, हमारी पार्टी एसयूसीआई (कम्युनिस्ट) पूंजीपतियों से एक पैसा भी नहीं लेती है और न ही कभी लेगी। हम गरीबों के प्रतिनिधि हैं। इस चुनाव को भी हम गरीबों और अमीरो के बीच एक लड़ाई के रूप में ही देखते हैं और जनजीवन की ज्वलंत समस्याओं के समाधान का एकमात्र रास्ता जनआन्दोलन का निर्माण करने के एक हथियार के रूप में इस्तेमाल करना चाहते हैं। अत: अगर हमें इस चुनाव में जीत हासिल होती है तो हमारे उम्मीदवार अतिक्रमण के नाम पर गरीबों को बेघर करने के प्रयास, महिलाओं पर अत्याचार, स्कूल-कॉलेजों बेतहाशा फीस बढ़ोतरी, पानी-बिजली, सड़क, नाली आदि मुद्दों को लेकर विधानसभा में मुखर होंगे और आन्दोलनकारियों के साथ कन्धे से कन्धा मिला कर लड़ाई की अग्रिम पंक्तियों में शामिल होंगे।

झारखण्ड में होने जा रहे विधानसभा चुनाव में हमारी पार्टी एसयूसीआई (कम्युनिस्ट) की ओर से खड़े होने वाले उम्मीदवारों की सूची निम्नलिखित है :

क्रम सं	विधानसभा क्षेत्र	उम्मीदवार का नाम
1.	हटिया	विनय कुमार
2.	खिजरी	असरिता खलखो
3.	बोकारो स्टील सिटी	मनोज कुमार सिंह
4.	बेरमो	लालजी मांझी
5.	चन्दनकियारी	कालीदासी बाउरी
6.	बाघमारा	चन्दन कुमार श्रीवास्तव
7.	घाटशिला	जयदेव सिंह मुंडा
8.	जुगसलाई	राजेश सईस
9.	ईचागढ़	आशुदेव महतो

ऐतिहासिक-वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में

धर्म, नीति–नैतिकता, मूल्यबोध और धर्मनिरपेक्षता के बारे में

शिवदास घोष

(देश के संकट ने आज इसके आर्थिक और राजनैतिक क्षेत्र से भी बढ़ कर, जनजीवन में नैतिक मूल्यों, आचार-आचरण और सिद्धांतों के क्षेत्र में भयंकर तबाही ला दी है। पुराने धार्मिक नैतिक मूल्य अब असरदार नहीं रहे हैं, मानवतावादी नैतिक मूल्य नाकाफी हो गये हैं। वैचारिक क्षेत्र में एक बड़ी भारी शून्यता व्याप्त है। धार्मिक कट्टरपंथी और रूढ़िवादी ताकतें प्राचीन भारत के परम्परागत और तथाकथित शाश्वत नैतिक मूल्यों की दुहाई देती हैं और लोगों में घोर धर्मोन्माद पैदा कर रही हैं, साम्प्रदायिकता व जात-पात का जहर घोल रही हैं और चुनावी समर्थन हासिल करने व सत्तारूढ़ होने के लिए इस स्थिति का खुल्लमखुल्ला फायदा उठा रही हैं। यह साम्प्रदायिकता का माहौल न केवल क्रान्तिकारी आन्दोलन के रास्ते की रुकावट है बल्कि देश की प्रगति में भी जबरदस्त बाधक है। जबकि शासक पूंजीपति वर्ग की ताबेदार और नैतिक आचरण, नैतिक संकोच, सिद्धांत और नैतिक मूल्यों से विहीन तथाकथित वामपंथी पार्टियाँ इन कट्टरपंथी ताकतों के हमलों के सामने आत्मसमर्पण करती जा रही हैं, खोखली लफ्फाजी का रास्ता लेने के सिवाय प्रतिरोध करने की कोई शक्ति नहीं रखती हैं। परिणामस्वरूप नैतिक मूल्यों, नैतिक आचार-आचरण, सिद्धांत, धर्म और धर्मनिरपेक्षता की भूमिका से सम्बन्धित सवालों पर लोगों में भ्रम की स्थिति है। ऐसी घड़ी में जब फासीवाद आघात करने पर उतारू है एक वास्तविक अंधकार हमारे देश में छाता जा रहा है। लेकिन ये वे मूल प्रश्न थे जिनका हमारे प्रिय दिवंगत नेता और शिक्षक कॉमरेड शिवदास घोष ने ऐतिहासिक और वैज्ञानिक दृष्टिकोण से बार-बार विश्लेषण किया ताकि संकट की इस घड़ी में लोगों को क्या करना चाहिए इस पर रोशनी डाली जा सके।

प्रस्तुत लेख हमारी पार्टी एस.यू.सी.आई.(सी.) के अंग्रेजी मुखपत्र प्रोलिटेरियन एरा के 2 अगस्त 1993 के अंक में छपे लेख का हिन्दी रूपान्तर है। यह कॉमरेड शिवदास घोष द्वारा भारत के महान साहित्यकार शरतचन्द्र चटर्जी के जयन्ती समारोहों के विभिन्न अवसरों पर की गई छः चर्चाओं के संक्षिप्त अंशों का संकलन है। सर्वहारा दृष्टिकोण के सम्पादक मण्डल का मानना है कि प्रस्तुत लेख की विचारधारा समस्या को गहराई से समझने और निदान करने में हमारी मदद करेगी। इसलिए इस लेख को प्रकाशित करना हमने जरूरी समझा। अंग्रेजी से हिन्दी में अनुवाद करने में अभिव्यक्ति, भाषा या किसी तरह की कमी-खामी और गलती के लिए सिर्फ हम जिम्मेदार हैं। – सम्पादक, स.दृ.)

वर्तमान में चर्चित ऐतिहासिक दौर में बुर्जुआ मानवतावाद के आदर्शों –व्यक्ति स्वातंत्र्य, नारी-स्वतंत्रता, लोकतंत्र इत्यादि आदर्शों को लोगों के मन में बसा देने वाली एक नई चेतना भारत में देखी गई थी। यह वह युग था जब इस देश में स्वाधीनता आन्दोलन की पूरे देशव्यापी प्रबल लहरें उमड़ रही थी। फिर भी सामाजिक रीति-रिवाज और आदतें हमारी समाज-व्यवस्था उस समय भी पुराने दकियानूसी हिन्दू समाज के कुसंस्कारों के अंधकार से घिरी हुई थी। समाज में रहस्यवाद, अंधविश्वास व धार्मिक रूढ़िवाद-कट्टरपन का बोलबाला था। संक्षेप में यूँ कहिए कि समाज, असल में, धार्मिक कट्टरपन और धार्मिक पूर्वाग्रहों की गहरी दलदल में धंसा हुआ था। नतीजतन, स्वाधीनता और औद्योगिक क्रान्ति की प्रबल आंकांक्षा को केन्द्र करके देश में उस समय जो लोकतांत्रिक चिंतन और आदर्श उभर कर आ रहे थे और आधुनिक मानवतावादी नैतिक मूल्यों की धारणाएं, रूचि-संस्कृति की नई धारणाएं जोर पकड़ती जा रही थी और उस वक्त की पुरानी और पतनशील समाज व्यवस्था को ढहाने के लिए सामाजिक और सांस्कृतिक क्रान्ति की चाह पैदा कर रही थी, उनका पुराने समाज के नाना धार्मिक अंधविश्वासों, जात-पात के भेदभाव और धर्म के नाना कुसंस्कारों में गहरी जड़ें जमाये हुए रीति-रिवाजों और आदतों की ताकतों के साथ प्रबल विरोध भी दिखाई दे रहा था। दोनों एक दूसरी से भीषण संघर्ष में लिप्त थी। देश की परिस्थिति या सामाजिक स्थिति कहिए, सारांश में, तब ऐसी थी।

उधर, दूसरी ओर, अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति की खास बात तब क्या थी? अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में तब विश्व पूँजीवादी क्रान्ति का दौर कभी का गुजर चुका था। बहुत अर्सा पहले दुनिया में सामन्ती समाज व्यवस्था को तोड़ कर पूँजीवादी क्रान्ति शुरू हुई थी और यूरोप के विभिन्न देशों व अमेरिका में पूँजीवादी क्रान्ति सम्पन्न होने के बाद वहाँ पर अब पूँजीवाद अपनी जड़ें जमा चुका था। इसके बाद प्रतिक्रियावादी हो गया था और साम्राज्यवाद में रूपान्तरित हो गया था। इसके फलस्वरूप पूँजीवादी क्रान्ति को केन्द्र करके 'सेक्यूलर' या धर्मनिरपेक्ष मानवतावाद के आधार पर नई संस्कृति, नये मूल्यबोध, व्यक्ति स्वतंत्रता की नई धारणा, नारी की स्वाधीनता, दरअसल नारी के बारे में एक बिल्कुल नया नजरिया और नारी के बारे में नये मूल्यबोध की धारणा इत्यादि जो कुछ भी आधुनिक यूरोपीय सभ्यता ने पैदा किया था, उनका एक समय अग्रदूत होते हुए भी पूँजीवाद उसका कभी यह जो उदार और व्यापक दृष्टिकोण था उसे अब खो चुका था। क्रान्ति की अपनी भयग्रन्थी से अर्थात् पूँजीवाद के खिलाफ विद्रोह में उठ खड़ी हुई सर्वहारा क्रान्ति की उमड़ती लहरों से बचने के लिए उसने धर्म के साथ समझौता कर लिया था। धार्मिक कुसंस्कारों, अंधविश्वासों, धार्मिक नैतिक मूल्यों, यहाँ तक कि नस्लपरस्ती के साथ भी उसने समझौता कर लिया था। उदाहरण के लिए, उस जमाने के बर्नाड शॉ जैसे प्रतिभाशाली लेखक समेत अनेक दिग्गज पलायनवादी हो गए थे और वे खुद भी मानवद्वेषी अर्थात् सीनिक हो गए थे। वे सीनीसिज़्म के दर्शन को सींच रहे थे जो हर व्यक्ति या चीज में केवल दोष ही दोष देखता है।

दूसरी ओर, राजनैतिक सिद्धान्त और राजसत्ता के चरित्र में सब देशों में पूँजीवाद आजादी और लोकतंत्र पर प्रतिबद्ध रहने की बजाय जंगखोरी (मिलिट्रिज़्म) और अफसरशाही से ज्यादा से ज्यादा जुड़ता रहा था। अन्ततः यह घोर साम्राज्यवादी रुख-रवैया और नजरिया दिखलाने लगा था। स्थिति ऐसी हो गई थी कि दूसरे देशों की जनता को अपने अधीन करना, उनकी आजादी छीनना और साम्राज्यवादी देशों की अपनी सीमाओं का विस्तार करना अब यूरोपीय सभ्यता की प्रधान विशेषता बन गई थी।

दूसरे शब्दों में यूँ कहिए कि सामाजिक विकास और प्रगति के क्षेत्र में विश्व पूँजीवाद अब अपना पहले वाला क्रान्तिकारी चरित्र खो चुका था और वह प्रतिक्रियावादी पूँजीवाद बन चुका था। पूँजीवाद के क्रान्तिकारी विकास के दौर में अध्यात्मवाद और धार्मिक नैतिक मूल्यों से लड़ते हुए यूरोप में एक दिन जो धर्मनिरपेक्ष मानवतावाद उभर कर आया था और जो मानवतावादी सामाजिक मानसिकता व उसके सहवर्ती सब सांस्कृतिक विचार एक दिन यूरोप में पैदा हुए थे, वास्तव में जिनके संसर्ग में आकर हम अपने देश में जनतंत्र व तत्सम्बन्धित नीति-नैतिकता की तमाम धारणाओं से परिचित हुए थे, वे सब विचार यूरोप में चरित्र में अब पहले के दौर जैसे प्रगतिशील और क्रान्तिकारी नहीं रहे थे। यूरोप की बुर्जुआ मानवतावादी विचारधारा में अब वह क्रान्तिकारी भावना और साइन्टीफिक टैम्पर यानी वैज्ञानिक रुझान नहीं रहा था। कोई इसे बुढ़ापाग्रस्त और पतनशील मानवतावाद भी कह सकता है। ये कहना चाहिए कि मानवतावादी मूल्यबोध हालांकि पूरी तरह निःशेष तो नहीं हुए थे पर उनकी वह पहले सी सरगर्मी भी नहीं रही थी। यूरोप में धार्मिक अन्धविश्वासों और धर्मान्धता के खिलाफ वह यौवन से भरपूर, जीवंत तेजस्वी, समझौताहीन और अडिग रुख अब नहीं बचा था।

मानवतावाद की दो धाराएं

नतीजा यह हुआ कि यूरोप में अब यह मानवतावादी चिन्तनधारा दो धाराओं में बंट गई थी–एक धारा वह थी जो उस पुरानी उदात्त मानवतावादी चिन्तनधारा की परम्परा में जारी रही जो नवजागरण और औद्योगिक क्रान्ति की भावना से धर्म और पुराने रीति-रिवाजों, कुसंस्कारों व अंधविश्वासों के विरुद्ध लड़ते हुए धर्मनिरपेक्ष मानवतावाद को निर्मित करने के संघर्ष द्वारा पैदा हुई थी। इस मानवतावादी धारा की अपील अभी खत्म नहीं हुई थी, पर मंदी पड़ती जा रही थी। मरणासन्न एवं प्रतिक्रियावादी पूँजीवाद के युग में दूसरी धारा वह थी जो पथ-प्रदर्शक सिद्धान्त के तौर पर युक्तिवादी सोच को तिलांजलि देकर और धर्म, अध्यात्मवाद और यहाँ तक कि नस्लवाद के साथ भी समझौता करके जैसे-तैसे जिन्दा रहने की कोशिश कर रही थी। यह ह्रासोन्मुख मानवतावाद ही तब यूरोप के राष्ट्रों का मुख्य रुझान बन गया था। मानवतावाद में जो कुछ अब शेष बचा था वह सब कुछ चरित्र में ह्रासोन्मुख हो चुका था और रुख-रवैये में अब साम्राज्यवादी हो चुका था। दरअसल, यह उस दौर के मानवतावादी की प्रधान विशेषता बन चुकी थी।

जैसा कि मैंने पहले कहा कि बुर्जुआ वर्ग उस समय सर्वहारा क्रान्ति और स्वतंत्रता संग्रामों की बढ़ती लहरों से भयभीत हो चुका था। मुंह से जनतंत्र की बात कहने पर भी असल में वह एक ओर तो जनतंत्र और व्यक्ति स्वाधीनता, व्यक्तित्व या व्यक्तिगत आजादी का विरोधी हो गया था और दूसरी ओर उसने व्यक्तिवाद की धारणा को एक सुविधा में तब्दील कर डाला था। सभी पहलुओं से यूरोप में मानवतावादी संस्कृति का पतन शुरू हो गया था और हर क्षेत्र को ह्रास ने आ घेरा था।

अन्तर्राष्ट्रीय पूँजीवाद की इसी पृष्ठभूमि में भारत में स्वाधीन, सार्वभौम राष्ट्र (Independent Nation State) निर्मित करने की प्रबल आकांक्षा से भारत में स्वाधीनता आन्दोलन शुरू हुआ था। राष्ट्रीय जागृति पैदा हुई थी। इसी की प्रेरणा से और मानवतावादी विचारों एवं धारणाओं के प्रभाव से व्यक्ति-स्वतंत्रता, नारी-स्वतंत्रता और रुचि-संस्कृति व नीति-नैतिकता और संस्कृति के समूचे क्षेत्र के आदर्शों के लिए एक प्रबल इच्छा यहाँ समाज में पहले पहल उदित हुई थी।

ब्रिटिश साम्राज्यवादी शासन के तहत केन्द्रीभूत प्रशासन की स्थापना के बाद और अलग-अलग राष्ट्रीयताओं के मेल-जोल से उस समय देश में जो उभारशील राष्ट्रीयतावादी भावना या जो देशभक्ति की सरगर्मी उभर रही थी, यह एक नई परिघटना थी –जिसे हम आधुनिक राष्ट्रवाद का नाम देते हैं–यह यहाँ पहले बिल्कुल मौजूद नहीं थी। एकता की जो भावना-धारणा इस उभार से पहले भारत पर लागू हो सकती थी वह धार्मिक एकता थी, उस हद तक सांस्कृतिक एकता थी। समूचे भारत को लें तो राष्ट्रीयतावादी भावना का उभार या जिसे हम देश भक्ति की भावना का उभार भी मान सकते हैं–यह देश प्रेम की भावना जिसकी हम आज बात करते हैं–इसको आए बहुत ज्यादा अर्सा नहीं हुआ। यह देश प्रेम की भावना भारत में ब्रिटिश शासन स्थापित हो जाने से पहले मौजूद नहीं थी। यह देश तब अनेक छोटी-छोटी रियासतों में बंटा हुआ था जिनमें विभिन्न राजा-महाराजा राज करते थे जो आपस में लड़ते रहते थे। आजादी या देश-प्रेम का उस समय जो अर्थ हो सकता था उसे एक राजा के खिलाफ दूसरे राजा के लिए लड़ना कहा जा सकता है। उदाहरण के लिए, राजपूत जोकि अपने समुदाय की आजादी के लिए मुगलों से लड़े, वे आजादी के एक ऐसे विचार से संचालित-निर्देशित थे जिसका आधार अलग-अलग राजाओं में अलग-अलग था। बारह भूणियों अर्थात् उस समय के बंगाल के बारह बड़े-बड़े जागीरदारों ने जिसे आजादी की परिकल्पना की थी उसका दायरा उनके स्थानीय शासन की स्थानीय सीमा में ही सीमित था जोकि सामन्ती शासन के विशिष्ट लक्षणों के सिवाए और कुछ नहीं था। परन्तु आधुनिक राष्ट्रवाद या देश प्रेम का अर्थ है पूरे भारत भर में एक ही स्वर में गूँज उठने वाला देश प्रेम। इस आधुनिक राष्ट्रवाद या देश प्रेम का शुभारम्भ ब्रिटिश शासन में ही पहले पहल समाज में हुआ था। ब्रिटिश राज में एक केन्द्रीभूत प्रशासन, संचार व्यवस्था, रेल सम्पर्क आदि का नतीजा यह हुआ कि पहले की राष्ट्रीयताओं और जन-जातियों की अर्थव्यवस्थाएं, वे स्थानीय कृषि अर्थव्यवस्थाएं ढह गई और विलय के द्वारा उनकी जगह एक देशव्यापी व्यापार-वाणिज्य व्यवस्था विकसित होनी शुरू हुई और इस प्रक्रिया में देश भर में राष्ट्रीयतावादी भावना के पैदा होने से एक नई जागृति आई जिसे हम कह सकते हैं कि चिन्तन की एक नई धारा पैदा हुई। मैं इसका उल्लेख चिन्तन की मानवतावादी धारा के रूप में कर सकता हूँ। इसकी प्रधान दिशा पुरानी संस्कृति, मध्ययुगीन अंधकार और सामन्ती धार्मिक अन्धविश्वासों के खिलाफ थी। (शेष पृष्ठ 4 पर)

धर्म, नीति-नैतिकता, धर्मनिरपेक्षता के बारे में...

(पृष्ठ 3 का शेष)

मानवतावाद–एक विशेष वैचारिक परिमण्डल

यहाँ एक बात है जिसे स्पष्ट कर देना होगा। यह मानवतावादी रुझान जिसके बारे में हम बात कर रहे हैं इसके असल में क्या मायने हैं? बहुत से लोग इस बात को मानने पर तुले हुए हैं कि मानवतावादी रुझान समाज में चिरकाल से ही मौजूद रहा है। अर्थात् यह मानते हैं कि इतिहास में सुदूर अतीतकाल से ही मानव समाज में मानवतावाद चला आ रहा है। ये लोग सोचते हैं कि मानव कल्याण के उद्देश्य से अर्थात् मानवजाति की भलाई की खातिर जो भी सोचा-विचारा गया है, जैसे मिसाल के लिए, वेद-उपनिषदों के विचार, बुद्ध, ईसा मसीह या मोहम्मद के निर्देश-उपदेश (precepts), वे सब सारत: मानवतावादी है। इस सवाल पर मेरा उनसे पूर्णत: मतभेद है। मैं बहुत ही जोर देकर यह बात कहना चाहता हूँ। जो लोग इस ढंग से सोचते हैं उन्हें पता होना चाहिए कि मानव कल्याण हेतु जो विचार हैं, वे सभी मानवतावाद के दायरे में नहीं आते। मानव कल्याण के लिए काम करना और मानव से प्यार करने का प्रचार करना मानवतावादी विचारधारा के जैसा नहीं है। सभी महापुरुषों ने मानव के कल्याण के लिए सोचा है और काम किया है। इसलिए हम उन कार्यों और चिन्तनों को मानवोचित या मानवीय चिन्तन (Humantarianism) कह सकते हैं, मानवतावाद (Humanism) नहीं। दूसरी ओर, मानवतावाद मानव चिन्तन-विचार का एक खास परिमण्डल है, अपनी विशेषताएं और अभिलक्षण लिये हुए एक खास परिमण्डल है।

धर्मनिरपेक्ष जनतंत्र, नारी-स्वाधीनता, व्यक्ति-स्वतंत्रता सरीखी जिन आधुनिक धारणाओं से हम परिचित हैं एवं एक विशेष प्रकार के आधुनिक राष्ट्रीय राज्यों, एक विशेष किस्म की राजसत्ता, जीवन की एक विशेष जनतांत्रिक पद्धति, नारीत्व, वैयक्तिकता, व्यक्ति का मर्यादा बोध और आत्मसम्मान बोध, नारी का मर्यादा बोध और आत्मसम्मान बोध, एथिकल फादरहुड-मदरहुड जैसी भावना-धारणाएं, संक्षेप में, ये सब भावना-धारणाएं मिलकर हमारे जीवन में जो वैचारिक बुनियाद या वैचारिक परिमण्डल या ढांचा औद्योगिक क्रान्ति या पूँजीवादी क्रान्ति के ऊपरी ढांचे के तौर पर गठित हुआ, उसी भावना-धारणा को मैं मानवतावाद या आधुनिक मानवतावाद की कोटि में रखना चाहता हूँ। लिहाजा मानवतावाद का अर्थ है अपना एक खास पद्धतिगत दृष्टिकोण और खास नैतिक-सांस्कृतिक फ्रेम लेकर, विश्लेषण और संकल्पना का एक बिल्कुल नया आधार लेकर चिंतन का एक खास परिमण्डल जो समाज में विज्ञान, वैज्ञानिक युक्ति-तर्क एवं दृष्टिकोण के आगमन से उपजा था। इसको ही हम मानवतावाद कहते हैं और यह मानवतावाद मानव कल्याण के सभी पूर्ववर्ती आदर्शों से गुणात्मक रूप में भिन्न है। अगर हम इस भिन्नता को समझने में नाकाम होते हैं तो मानव-कल्याण की जो धारणा धार्मिक नैतिक मूल्यबोधों पर आधारित है और जिसका उपदेश धर्म-गुरूओं के द्वारा इतिहास में अतीत में लम्बे अर्से से दिया गया उसमें और जिसको हम आधुनिक मानवतावादी सोच कहते हैं उसमें फर्क नहीं कर सकेंगे जो जनतंत्र, व्यक्ति स्वतंत्रता और नारी-मुक्ति के आदर्शों पर आधारित है –दूसरे शब्दों में, वह मानवतावादी वैचारिक रुझान जो गेटे, रूसो, वाल्टेयर, टॉलस्टॉय, रवीन्द्रनाथ, शरत्चन्द्र, प्रेमचन्द आदि के विचारों में मूर्त रूप में व्यक्त हुआ है और जो हमारे स्वतन्त्रता आन्दोलन में प्रतिबिम्बित हुआ।

मानव कल्याण की पूर्ववर्ती धारणाएं यद्यपि तत्कालीन सामाजिक जरूरतों से पैदा हुई थी पर इन्होंने तथाकथित शाश्वत सत्यों या शाश्वत धार्मिक मूल्यबोधों को भी मूर्त रूप में प्रस्तुत किया था। दूसरे शब्दों में, इन धारणाओं में इस बात को संज्ञान में नहीं लिया गया कि नये-नये सत्य हर पल वास्तविकता के गर्भ में पैदा होते रहते हैं। इस बात पर गौर न करने से इन्होंने एक खास सन्दर्भ में एक खास सत्य को शाश्वत मान लिया और हमेशा हर मामले में इसको हर खास सत्य पर थोपने की कोशिश की। पता नहीं आप मेरी बात को किस हद तक साफ समझ पाएंगे और मैं अपनी बात को कितना साफ कर पाऊँगा। बात यह है कि धार्मिक मूल्यबोधों से आमतौर पर हम यह अर्थ समझ लेते हैं कि ये शाश्वत मूल्यबोध हैं। लेकिन जैसा कि मैंने पहले बताया कि सभी मूल्यबोध सदा बदलती जरूरतों यानी जीवन की गतिशीलता के साथ कदम मिलाती हुई मानवीय जरूरतों या सामाजिक जरूरतों से पैदा होते हैं। हर खास तरह के मूल्यबोध के अस्तित्व में आने और अस्तित्व से चले जाने अर्थात् उनके जन्म और मृत्यु का एक इतिहास होता है। मानवीय जरूरतों से सामाजिक जीवन में खास परिस्थितियाँ पैदा होती हैं तभी पुरानी सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था में आमूल परिवर्तन होता है।

सत्य की धारणा ऐसी है कि सत्य ठोस रूपों में व्यक्त होता है। सभी खास ठोस सत्य आपस में मिलकर एक निश्चित परिमण्डल में आम सत्य को बनाते हैं जो पूरे सामाजिक जीवन के तमाम पहलुओं में मार्गदर्शक सिद्धान्त के तौर पर काम करता है। यह आम सत्य भी अपनी विशेष कैटेगरी की सीमाओं में बंधा हुआ है। जब कभी नैतिक मूल्यों की एक खास धारणा को इस तरह से पेश किया जाता है कि जैसे यह शाश्वत हो और मानो उस विशेष कैटेगरी की सीमाओं का अतिक्रमण कर गई हो, तो यह ठोस और वस्तुगत वास्तविकता से इन्कार करना हो जाता है। फलस्वरूप मानव कल्याण के लिए सभी पवित्र इच्छाएं रहने के बावजूद यह मानव के लिए फायदेमन्द होने की बजाय भारी नुकसान पहुँचाती है।

इसके विपरीत, हमें यह समझना होगा कि इन्सान की जरूरतों को किसी एक खास बिन्दु पर स्थिर नहीं रखा जा सकता। इन्सान की जरूरतें लगातार बढ़ती रहती हैं। कोई भी इन्हें एक जगह स्थिर नहीं रख सकता। जीवन यापन के सदा बदलते ढंग व साधनों को एक ही खास स्थिति में स्थिर रखना किसी के बस की बात नहीं है और प्रकृति के साथ मानव के अनवरत संघर्ष से पैदा हो रहे जीवन के सभी पैटर्नों, ढंगों और तौर-तरीकों को भी कोई एक ही खास स्थिति में स्थिर नहीं रख सकता।

उदाहरण के लिए, कुछ लोगों के लिए हमारे देश की पुरानी आश्रम व्यवस्था एक शान्त एकान्तवास के तौर पर चिरकाल से आकर्षक लगती है और भोलेपन से वे उस प्राचीन जीवन में वापस लौट जाने की आशा करते हैं। उन्हें इसमें चिर-शान्ति से रहने की उम्मीद है। लेकिन पहली बात तो यह है कि वे उस प्राचीन आश्रम व्यवस्था के तमाम पहलुओं से अनभिज्ञ लगते हैं। उस जीवन की शान्ति और प्रशान्ति के बारे में मनगढ़ंत कहानियों को लगातार अपने मन में बैठाते जाने से उन्होंने अपनी मानसिकता की गहराइयों में इसका एक मोह पाल लिया है। दूसरी बात यह है कि वे इस बात को नहीं पाए कि क्यों ऐसा हुआ कि वे दु:ख-तकलीफों से मुक्त उस 'स्वर्गनुमा' संसार को छोड़कर अपनी वर्तमान लाचारी की स्थिति में पहुँच गए; उन्हें उनकी वर्तमान स्थिति में धकेल देने में किसका हाथ है। अगर उन्होंने इस वास्तविक स्थिति को रूप देने वाले द्वन्द्व की प्रकृति और परिवर्तन की प्रक्रिया को सही-सही समझ लिया होता तो वे यह भी समझ गए होते कि कैसे और क्यों यह होता है। अर्थात् जरूरतों की उनकी धारणा में उनके जाने-अनजाने धीरे-धीरे लगातार परिवर्तन ला रहे हैं, उनके जीवन में लगातार काम कर रहे समाज के परिवर्तन के अटल नियमों को उन्होंने अगर जान लिया होता तो उन्हें पता चल जाता कि कैसे यह सब होता है। तर्क के लिए मान लिया कि वे उस प्राचीन आश्रम-व्यवस्था में वापस लौट भी गए होते, यद्यपि यह एकदम नामुमकिन है, फिर भी सामाजिक परिवर्तन के उसी अटल नियम द्वारा खींच कर वे इसी वर्तमान स्थिति में लाकर पटक दिए जाते। दरअसल, ये मूल्यबोध आदि कहीं एक जगह ठहरे नहीं रह सकते, ये लगातार बदलने को बाध्य हैं। ये लाजिमी तौर पर बदलते रहेंगे ही।

धर्म का आविर्भाव

ऐसी सूरत में, बदलती हुई मानवीय जरूरतों के तकाजे से किसी समाज के आमूल परिवर्तन के साथ एवं हर विशेष सामाजिक व्यवस्था में जैसी उसकी विशेष उत्पादन व्यवस्था, उत्पादन सम्बन्ध और वितरण-व्यवस्था होती है, उसके परिपूरक उस समाज का भावात्मक ऊपरी ढाँचा, मानसिकता, चिन्तन-विचार, नीतिशास्त्र, आचार-संहिता, न्याय-नीति, दार्शनिक दृष्टिकोण इत्यादि पैदा होता है और विकसित होता है। एक समाज में हर विचारधारा, नीति-नैतिकता-सदाचार सम्बन्धी हर धारणा और अच्छे व बुरे अथवा न्याय-अन्याय की हर धारणा एक विशेष धारणा होती है जो उस विशेष समाज की प्रगति और विकास की जरूरत के प्रयोजन से पैदा होती है। धर्म के मामले में भी ऐसा ही है। धर्म भी एक विशेष समाज के भावात्मक ढाँचे से जुड़ा हुआ है। बौद्ध धर्म, कन्फूशियसवाद, ईसाइयत या इस्लाम के धार्मिक मूल्यबोध या धार्मिक आदर्श एवं विचार आदि जिन्होंने लोगों को उनके अपने-अपने देशों में उस समय के समाजों में प्रगति पथ पर काफी आगे बढ़ाया था, सब के सब सम्पत्ति के व्यक्तिगत मालिकाने से जुड़े शोषणमूलक समाजों में ही पैदा हुए थे। अतिप्राकृतिक अर्थात् अलौकिक सत्ता की धारणा जिसे हम ईश्वर के नाम से पुकारते हैं, इसका आविर्भाव समाज में स्थायी सम्पत्ति के सृजन के साथ ऐतिहासिक तौर पर जुड़ा हुआ है। जब तक स्थायी सम्पत्ति अस्तित्व में नहीं आई थी आप ऐसे किसी भी समाज में किसी अतिप्राकृतिक सत्ता की धारणा भी आप नहीं पाएंगे।

धर्म या ईश्वर की धारणा या इस विषय में, वस्तु से परे सत्ता की धारणा को केवल समाज विकास की एक ऐसा अवस्था में अस्तित्व में आई पाएंगे जिसमें उस समय कृषि सम्पत्ति या स्थायी सम्पत्ति का कोई अन्य रूप सृजित किया जा चुका था। हालाँकि, अगर विद्वान लोग इतिहास से इसके विपरीत कुछ दिखा सकते हैं तो मैं उसे मानने के लिए तैयार हूँ। पर मेरी जानकारी में, कृषि के आविर्भाव से पहले या स्थायी सम्पत्ति के किसी रूप का सृजन जब तक नहीं हो गया तब तक वस्तु से परे किसी सत्ता की धारणा मानव के चिन्तन-विचार के क्षेत्र में अस्तित्व में नहीं आई थी। आदिम समाज में कोई चीज जो रहस्यमयी दिखाई दी उसे वस्तु के सिवा और किसी चीज से सम्बन्धित नहीं सोचा गया। शक्ति की जो धारणा समाज में उस समय विद्यमान थी वह भी वस्तु की शक्ति अर्थात् एक भौतिक शक्ति से ही सम्बन्धित थी। आदिम समाज के रहस्यमय क्रिया-कलापों, कपोल कथाओं से प्रचलित मिथकों और जादू-टोनों का धर्म या उपासना पद्धति आदि सब की उत्पत्ति वस्तु की शक्ति अर्थात् भौतिक शक्ति पर काबू पाने के लिए आदिम-मानव के प्रयासों के कारण हुई है। बाद में, स्थायी सम्पत्ति के सृजन के बाद विकास के एक विशेष स्तर पर व्यक्तिगत सम्पत्ति के मालिकाने को लेकर यह समाज वर्गों में विभाजित हो गया अर्थात् समाज शोषितों और शोषकों में बंट गया। इस तरह आदिम गोष्ठीबद्ध समाज या कबीलाई समाज दो वर्गों में बंट गया। एक वर्ग जमीन या अन्य जायदादों का मालिक बन गया जबकि दूसरे वर्ग में दास शामिल थे। तब से लेकर अनेक रूपान्तरणों के माध्यम से सामन्ती समाज की स्थापना के बाद दास भूदासों में बदल गए। सारांश में, ऐसा इतिहास है समाज विकास का। अपनी मौलिक प्रक्रिया में समाज का विकास हर देश में एक जैसा ही रहा है हालांकि ऐसा भी हुआ है कि एक विशेष अवस्था किसी देश में पहले विकसित हो गई और किसी देश में बाद में विकसित हुई। इसके अलावा ऐसा भी हुआ है कि कुछ अन्तरों और विभिन्नताओं ने अलग-अलग देशों में विकास की अपनी-अपनी एक विशेष प्रक्रिया को चिन्हित किया। हमारे देश में जाति-व्यवस्था या वर्ण व्यवस्था का उदाहरण लेकर विचार कर लीजिए। यह विशेष परिघटना इस मौलिक सामाजिक प्रक्रिया के बाहर नहीं पड़ती है। फिर भी, यह एक अलग मामला है और यहाँ इस पर मेरे चर्चा में जाने की जरूरत नहीं है।

चूँकि धर्म, ऊपरी ढाँचे से सम्बन्धित है इसलिए आप देखेंगे कि उत्पादन व्यवस्था में परिवर्तन के साथ ही धार्मिक सुधार भी बार-बार हुए हैं। धर्म को सुधारने के बार-बार दोहराए गए आह्वान धर्म को बदली हुई सामाजिक व्यवस्था के परिपूरक एक सजीव शक्ति बनाए रखने के लिए दिए गए अर्थात् धर्म को जहाँ तक संभव हो बनाए रखने के लिए दिए गए। किसी भी खास रस्मो-रिवाज को, क्या जायज और क्या नाजायज है -इसकी किसी भी धारणा विशेष को या उदाहरण के लिए आत्मा की मुक्ति या मोक्ष की धारणा आदि जिन सब धारणाओं के साथ ईश्वर की धारणा अस्तित्व में आई, उन सब को सदा के लिए ज्यों का त्यों कायम नहीं रखा जा सका। जहाँ इन सब को ज्यों का त्यों कायम रखना सम्भव होता तो धार्मिक सुधारों के लिए कोई आन्दोलन नहीं हुआ होता। धर्म प्रचारकों ने स्वयं धार्मिक सुधारों के लिए समय-समय पर अनेक आन्दोलनों का नेतृत्व किया क्योंकि इसके बिना धर्म जिन्दा नहीं रह सकता था।

हालांकि धर्म को सुधारने और जिन्दा रखने की भी एक सीमा है। जब औद्योगिक क्रान्ति ने जीवन को उसके तमाम पहलुओं में गहराई से प्रभावित किया, तब यह सीमा पार हो गई और समाज के एक आमूल परिवर्तन के लिए एक चाह पैदा हुई। इसने

(शेष पृष्ठ 6 पर)

श्रमिकों व कर्मचारियों के प्रदेश स्तरीय सम्मेलन की घोषणा

5 दिसंबर को हजारों श्रमिक व कर्मचारी उतरेंगे सड़कों पर

श्रम कानूनों में बदलाव नहीं है स्वीकार

भोपाल। आज राजधानी के इतवारा स्थित मोढ समाज की बगिया में प्रदेशभर से श्रमिक व कर्मचारी संगठनों के प्रतिनिधियों ने एकजुटता का नायाब नजारा पेश किया। बीएमएस, इंटक, एटक, सीटू, एचएमएस, एआईयूटीयूसी, सेवा, बैंक, बीमा, केन्द्र, राज्य, बीएसएनएल के प्रतिनिधियों ने एक स्वर से केन्द्र और राज्य सरकार के श्रम विरोधी रवैये की भर्त्सना की।

गत 15 सितंबर को सभी 11 केन्द्रीय श्रमिक संगठनों व कर्मचारी महासंघों के राष्ट्रीय सम्मेलन के पश्चात पूरे प्रदेशों में सम्मेलनों की श्रृंखला जारी है। इसी कड़ी में आज के सम्मेलन में प्रदेश के हर कोने व उद्योग से प्रतिनिधिगण शामिल हुए। सम्मेलन की अध्यक्षता बीएमएस के विष्णुकांत ठाकुर, इंटक के रामराज तिवारी, एटक के कृष्णा मोदी, सीटू के सुबीर तालुकदार, एआईयूटीयूसी के उमाप्रसाद के अध्यक्ष मंडल द्वारा किया गया।

कन्वेंशन को संगठनों के राष्ट्रीय नेता बीएमएस के राष्ट्रीय उपाध्यक्ष अख्तर हुसैन, एटक के राष्ट्रीय कार्यवाहक अध्यक्ष एच महादेवन, सीटू के राष्ट्रीय अध्यक्ष ए के पद्मनाभन, एआईयूटीयूसी के राष्ट्रीय सचिव मंडल सदस्य आर के शर्मा, इंटक के आर डी त्रिपाठी के साथ केन्द्रीय श्रमिक संगठनों के प्रांतीय नेता प्रमोद प्रधान, रूपसिंह चौहान, ज्ञानप्रकाश तिवारी, जे सी बरई, विष्णुकांत ठाकुर, बैंक कर्मचारी नेता व्ही के शर्मा,

सम्मेलन को सम्बोधित करते हुए एआईयूटीयूसी के सचिवमण्डल सदस्य कॉमरेड आर के शर्मा

बीमा कर्मचारी नेता पूषन भट्टाचार्य, केन्द्रीय कर्मचारी नेता जी एस आसीवाल ने संबोधित किया।

वक्ताओं ने केन्द्र व प्रदेश सरकार द्वारा श्रम कानूनों में एकतरफा बदलाव करने की तीव्र आलोचना करते हुए कहा कि चंद उद्योगपतियों व मुनाफाखोरों को फायदा पहुंचाने के लिए लाखों-करोड़ों मजदूरों के अधिकार पर हमला हो रहा है। उन्होंने कहा कि प्रधानमंत्री के विदेश दौरों एवं प्रदेश में इन्वेस्टर मीट में की गई घोषणाओं के अमल से देश-प्रदेश का विकास नहीं बल्कि उद्योगपतियों का विकास होगा। श्रमिकों के अधिकारों के हनन से अंततः विकास नहीं पूरे देश को विनाश की ओर ढकेला जा रहा है। उन्होंने कहा कि चौतरफा मंहगाई के इस दौर में न तो इस पर रोक लगाने के प्रभावी कदम उठाये जा रहे हैं और न ही श्रमिक वर्ग को राहत देने के लिए न्यूनतम मजदूरी बढ़ायी जा रही है।

वक्ताओं ने सार्वजनिक उद्यमों के विनिवेशीकरण तथा बीमा व प्रतिरक्षा जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों में विदेशी निवेश को लाने के प्रयासों की घेर निन्दा की। उन्होंने कहा कि वर्तमान सरकार भी पिछली सरकार की तर्ज पर श्रमिकविरोधी व जनविरोधी मुहिम चला रही है। ऐसे में देश के मेहनतकशों के पास एकजुट संघर्ष के अलावा कोई विकल्प नहीं है।

सम्मेलन ने सर्वसम्मति से घोषणा पत्र जारी करते हुए आगामी 5 दिसंबर को प्रदेशभर के हजारों-हजार श्रमिक व कर्मचारी भोपाल पहुंचकर इन नीतियों के खिलाफ विशाल विरोध रैली निकालेंगे।

ज्वलंत मांगों को लेकर किसान – खेतमजदूरों के जगह – जगह धरने – प्रदर्शन

झज्जर(हरियाणा) : मांगों को लेकर ऑल इण्डिया कृषक खेतमजदूर संगठन ने 10 नवम्बर को उपायुक्त कार्यालय पर जोरदार प्रदर्शन किया। सैकड़ों किसान श्रीराम पार्क में एकत्रित हुए, केन्द्र व राज्य सरकार की किसान-विरोधी नीतियों के खिलाफ जोरदार नारे लगाते हुए वहां से जुलूस निकाला जो बस अड्डा, अम्बेडकर चौक, सिलानी गेट होते हुए उपायुक्त कार्यालय पहुँचा और मुख्यमंत्री व कृषिमंत्री के नाम ज्ञापन उपायुक्त को सौंपा।

मांग पत्र में सभी फसलों के लाभकारी दाम देने जो लागत मूल्य से 50% अधिक हों, धान व कपास की सस्ती खरीद से हुए घाटे का प्रति क्विंटल 2000 रुपये मुआवजा देने, बुढापा पेन्शन 2000 रुपये महीना तुरंत लागू करने समेत सरकारी सुविधाओं पर आधार कार्ड की शर्त हटाने, फसलों के बोनस पर लगाई गई पाबंदी हटाने, प्राइवेट कम्पनियों के स्वार्थ में नये भूमि अधिग्रहण कानून 2013 में संशोधन न करने, गांव की जंगलात भूमि(बणी) पर ग्रामसभा के प्राकृतिक अधिकार को छीन कर उपायुक्तों को देने के फरमान को वापस लेने, रद्द हुए सेज की जमीन वापस किसानों को देने और रोग व कीड़ा लगने से खराब हुई कपास की फसल का मुआवजा तुरंत देने की मांग की गई। उपायुक्त कार्यालय पर किसानों को एसयूसीआई(कम्युनिस्ट) के राज्य सचिव कॉमरेड सत्यवान, संगठन के प्रदेशाध्यक्ष कॉ. अनूप सिंह मातनहेल, सचिव कॉ. विजय कुमार, सहसचिव कॉ. जयकरण माण्डौठी, झज्जर जिला सचिव कॉ. करतार सिंह अच्छेज, भिवानी से रोहताश सैनी, रिवाड़ी से रामकुंवार, नारनौल से बलबीर सिंह, कुरूक्षेत्र से राजकुमार, जीन्द से देवीराम और सोनीपत से राजबीर ने सम्बोधित किया। किसान नेताओं ने कहा कि जब तक मांगें पूरी नहीं हो जाती आन्दोलन जारी रहेगा और तेज किया जाएगा।

उपायुक्त कार्यालय झज्जर पर प्रदर्शन करते हुए किसान

भिवानी(हरियाणा) : सूखे से नष्ट हुई फसल का मुआवजा देने, धान पर बोनस सहित अन्य मांगों को लेकर ऑल इण्डिया कृषक खेतमजदूर संगठन ने 4 नवम्बर को लघु सचिवालय पर धरना दिया। धरने को संगठन के राज्य सचिव कॉ. विजय कुमार और जिला सचिव कॉ. रोहताश ने सम्बोधित किया।

उपायुक्त झज्जर को ज्ञापन सौंपते हुए कॉ. अनूप सिंह

गाजीपुर(उ.प्र): उ.प्र. ऑल इण्डिया कृषक खेतमजदूर संगठन की जिला सांगठनिक कमेटी द्वारा 30 अक्टूबर को मुख्यमंत्री को सम्बोधित 18 सूत्री मांगों का एक ज्ञापन जिलाधिकारी की मार्फत भेजा गया।

ज्ञापन देने वालों में ऑल इण्डिया कृषक खेतमजदूर संगठन के त्रिभुवन नाथ, फुन्नू सिंह यादव, श्रीमोहन राय, मुरलीधर राय, गोपाल शर्मा आदि शामिल थे। जिलाधिकारी ने क्षेत्रीय मांगों पर कार्यवाही करने का आश्वासन दिया।

प्रतापगढ़ (उ.प्र): किसानों की उपजाऊ जमीनों का अधिग्रहण बंद करने, खाद-बीज-कीटनाशक व डीजल सस्ता करने, कृषि उत्पादो पर सब्सिडी बढ़ाने, बिजली आपूर्ति सुनिश्चित करने, खराब पड़े ट्रांसफार्मरों को अविलम्ब बदलने और इसके नाम पर पैसा वसूली पर रोक लगाने आदि 13 सूत्री मांगों को लेकर 29 अक्टूबर को किसान-खेतमजदूरों ने जिला मुख्यालय पर प्रदर्शन किया। जुलूस कपूर चौक से शुरू हुआ और घण्टाघर से होते हुए जिलाधिकारी कार्यालय पहुँच कर सभा में तब्दील हो गया। सभा को ऑल इण्डिया कृषक खेतमजदूर संगठन के जिलाध्यक्ष कॉ. शेषनाथ तिवारी, रामसमुझ मौर्य, विजयानन्द तिवारी ने सम्बोधित किया। सभा का संचालन कॉ. पुष्पेन्द्र विश्वकर्मा ने किया। अंत में मुख्यमंत्री को सम्बोधित 13 सूत्रीय मांगों का ज्ञापन जिलाधिकारी की मार्फत भेजा गया

प्रतापगढ़(उ.प्र)

धर्म, नीति-नैतिकता, धर्मनिरपेक्षता के बारे में...

(पृष्ठ 4 का शेष)

अन्तर्राष्ट्रीयतावाद और राष्ट्रीयतावाद की महान भावना को समाज में आने देने के लिए सामन्ती जीवन की संकीर्ण और स्थानीय सीमाएं तोड़ दी। मानव के लिए अब दुनिया का मतलब मात्र उसका गाँव और उसका आस-पड़ोस नहीं रहा था। अब दुनिया की एक सुस्पष्ट तौर पर अलग धारणा उभर कर आई थी। उदाहरण के लिए आप देखेंगे कि जिस दुनिया के बारे में हमारे प्राचीन धर्मग्रंथों में उल्लेख मिलता है वह असल में भारत की इस भूमि तक सीमित थी। प्राचीन साहित्य में सभी कथाओं में घटना स्थल के तौर पर भारत का भले ही दुनिया के रूप में जिक्र किया गया है पर इसकी एक ओर की सीमा कथित तौर पर हिमालय और अफगानिस्तान थी और दूसरी ओर यूं कह लीजिए ज्यादा से ज्यादा बर्मा तक थी। मानो उन दिनों की ''दुनिया'' यहीं तक थी। अर्थात् पूरी दुनिया भारत में ही केन्द्रित थी। असल में हमारे प्राचीन साहित्य में दुनिया की यह धारणा अतीत काल से चली आ रही है। लेकिन आज जब कोई दुनिया का जिक्र करता है तो उसका मतलब मात्र भारत नहीं होता। ऐसा है वस्तु के विशेष होने का मामला।

यहाँ बेहतर होगा कि हम एक दूसरे बिन्दू पर भी विचार करें। वह बिन्दू है, धर्म ने हमेशा से शोषण से सम्बन्ध रखा है। धार्मिक मूल्यबोध स्थायी सम्पत्ति के सृजन के बाद व्यक्तिगत सम्पत्ति के विकास के परिपूरक के तौर पर पैदा हुए और विकसित हुए। हालांकि व्यक्तिगत सम्पत्ति के विकास का यह हित उस दौर में मानव समाज के चौतरफा विकास के सवाल के साथ गुंथा हुआ था और जब तक ये दोनों इस तरह अन्तर-सम्बन्धित रहे, कोई न कोई धर्म, अनैतिक सामाजिक रीति-रिवाजों, आचार-विचारों और अन्यायों के बावजूद भी जो कि धर्म के साथ जुड़े हुए थे, सामाजिक प्रगति के लिए एक भूमिका अदा करने के लिए हर देश में प्रकट हुए थे। इसका मतलब है कि धार्मिक नैतिक मूल्य भी सामाजिक विकास के हित में एक विशेष दौर में उभर कर आये हैं और उस विशेष सामाजिक अवस्था में इनकी प्रगतिशील भूमिका हावी रही है। ईसाइयत का उदाहरण ले लीजिए। इसने कुछ अवधि के लिए सामाजिक विकास में सहायक भूमिका अदा की है। कन्फूशियसवाद ने प्राचीन चीन में एक स्तर पर सामाजिक विकास में ऐसी ही भूमिका अदा की है। बौद्ध धर्म ने हमारे देश में यही किया है। शंकराचार्य का दर्शन-अद्वैतवाद, हिन्दू धर्म को इसकी जटिलताओं व अंधविश्वासपूर्ण आचार-विचारों के शिकंजे से मुक्त करने और इसमें एक नई जान डालने के लिए हमारे देश में समाज-विकास के विशेष स्तर पर सामने आया था। शंकराचार्य ने वास्तव में, अद्वैतवाद के प्रचार से धार्मिक सुधारों की एक जबरदस्त लहर चलाई थी। इस मायने में यह एक सामाजिक क्रान्ति थी। यह, एक ओर तो बौद्ध धर्म के प्रभाव से प्राचीन-सनातन हिन्दू धर्म की परम्परा की रक्षा करने और दूसरी ओर असंख्य देवी-देवताओं की हिन्दू पूजा-पद्धति, इसके जातिगत भेदभाव और हिन्दू सम्प्रदाय को बाँटने वाले पूर्वाग्रहों और अंधविश्वासों से लड़ते हुए हिन्दुओं को एक संगठित और शक्तिशाली सम्प्रदाय में ढालने का एक नया प्रयास था। इस तरह सभी धर्मों ने समाज विकास की धारा में एक विशेष स्तर पर एक सहायक भूमिका अदा की थी। फिर भी, चूंकि वर्ग शासन और वर्ग-शोषण व्यक्तिगत सम्पत्ति के मालिकाने से अभिन्न रूप से जुड़े हुए हैं इसलिए सभी धर्म भी आखिरकार, कमोबेश शोषक वर्ग के हाथों में शोषण का हथियार ही बनकर रह गए। ईसाइयत जो कभी गुलामों की मुक्ति के लिए गुलामों के मालिकों के खिलाफ लड़ी थी और जिसने प्राक-ईसाई धर्मों या उस जमाने के वस्तुवादियों के मुकाबले में ईश्वर की धारणा को केन्द्रित करके एक नई धार्मिक-प्रणाली कायम की थी अन्ततः खुद ने भी शासकों के धर्म का दर्जा हासिल कर लिया और शासकों के हाथ में शोषण के जबरदस्त हथियार में बदल गई।

यह बात तब स्पष्ट हो जानी चाहिए कि धर्म सामाजिक विकास और प्रगति की धारा में एक स्तर पर उभर कर आया था और फिर बाद के दौर में शासक वर्ग के हाथों में एक सुविधा में तब्दील हो गया था। उस समय यहाँ पादरी-पुरोहितों का प्रधान काम धर्म-ग्रंथों के आदेश-निर्देशों की व्याख्या करना था ताकि राजा के स्वार्थ की रक्षा की जा सके। बदले में राजा ब्राह्मणों के लिए कर्त्तव्यबद्ध था। उन्हें अपना दबदबा-प्रभुत्व जमाने और व्यभिचार में लिप्त रहने तक की छूट दी हुई थी। हालांकि यह भी इतनी आसानी से नहीं हुआ। उस युग का पूरा ऐतिहासिक लेखा-जोखा मिलना सम्भव नहीं है। लेकिन इस बात की जाँच-परख करने के लिए उस जमाने की जो भी थोड़ी-बहुत जानकारी हम रखते हैं उससे और उसका विश्लेषण करने के लिए सम्भावना के नियम का वैज्ञानिक तरीका अपना कर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि एक स्तर पर ब्राह्मणों और क्षत्रियों के बीच आपस में भीषण लड़ाई हुई थी। ब्राह्मण भी उस समय कोई कम पराक्रमी या लड़ाकू नहीं थे। परशुराम और बहुत से अन्य ऋषियों का उदाहरण ले लीजिए जो क्षत्रियों के खिलाफ बड़ी शूरवीरता के साथ लड़े थे। हालांकि, अन्त में ब्राह्मणों को क्षत्रियों की शक्ति के सामने झुकना पड़ा था। कब और कैसे उनका यह हश्र हुआ, इसका विवरण एक लम्बा इतिहास है। इतिहास तो है लेकिन यहाँ हमें उसमें जाने की जरूरत नहीं है। मेरा बिन्दु यह है कि एक स्तर पर धर्म की इस प्रगतिशील भूमिका का सामन्ती समाज व्यवस्था की स्थापना के या हो सकता है स्वयं दास-मालिक व्यवस्था के दौरान ही किसी समय धीरे-धीरे अधःपतन होना शुरू हो गया था। तब से लोगों के दमन और शोषण में धर्म की भूमिका और इसके अधःपतित दस्तूरों, रीति-नीतियों का प्रचलन हो गया। इसके फलस्वरूप एक स्थिति पैदा कर दी गई जब सामाजिक प्रगति के सभी दरवाजे बन्द कर दिए गए, पूरे का पूरा समाज अंध-विश्वासों और अनैतिक धन्धों-कुप्रथाओं की दलदल में धंसता चला गया। वह अवस्था कभी की पार या निःशेष हो चुकी थी जब धर्म अपने में सुधार और फिर सुधारों में सुधार करके जिन्दा रह सके। समाज में सड़न परले पार की चरम सीमा पर पहुँच चुकी थी और जैसा कि इसे हम कहते हैं, ये अंधकार का युग था। इसी के गर्भ से यूरोप में औद्योगिक क्रान्ति के साथ-साथ नवजागरण या रेनेशां का आविर्भाव हुआ।

धर्म-निरपेक्ष मानवतावाद

लोग उस समय अंधता, कट्टरपन और अंधविश्वासों में डूबे हुए थे। धर्म, पुरोहितगिरी और निरंकुशता के द्वारा दमित-पीड़ित उन लोगों को कोई हल नजर नहीं आता था। वह क्या चीज थी जिसने इस दमनात्मक स्थिति से मानव की मुक्ति को सम्भव बनाया? आदमी ने समझ लिया कि ईश्वर है या नहीं इस पर बहस करना बेकार की कसरत है क्योंकि केवल तर्क-बहसों के द्वारा भी इसे साबित करने का कोई उपाय नहीं है। निश्चय ही, हर किसी की इस प्रश्न पर स्पष्ट समझदारी नहीं थी इसलिए यह नहीं हो सका कि हर कोई ईश्वर के अस्तित्व के खिलाफ सही दलील दे पाया। फिर भी, एक बात को उनमें से बहुत लोग समझ गए कि केवल विश्वास भी ईश्वर के अस्तित्व को किसी तरह साबित नहीं कर सकता। आस्तिक लोग जो कुछ चाहते थे वह था कुछ बेतुकी दलीलों को गढ़कर दूसरों पर अपना विश्वास थोप देना। लोगों ने भी समझ लिया कि मान लो अगर ईश्वर है तो भी तो इस प्रश्न पर उलझना बेकार है। ऐसी चीज के बारे में बहस करने का क्या फायदा है जो समझ से बाहर हो, जिसके अस्तित्व को साबित करना असम्भव हो और जिसकी सर्वव्यापकता को वास्तव में महसूस करना असम्भव हो? इसकी बजाय, अगर हम अपने चारों ओर की दुनिया का और मानव जीवन का अध्ययन करने में अपने को लगायें और इस तरह हासिल किए गए ज्ञान को प्रकृति की शक्तियों को काबू करने व अपने फायदे के लिए इस्तेमाल करने में लगाएं तो यह हमारे लिए ज्यादा अच्छा है क्योंकि इनके बारे में हम कुछ प्रत्यक्ष ज्ञान भी रखते हैं, या इनकी भौतिक सत्ता हमारे द्वारा जानी जा सकती है। कम से कम इतनी चेतना तो उनमें जरूर पैदा हुई थी। यही वह समझ थी, यही वह सत्योपलब्धि थी जो विकास क्रम में अपने पीछे धर्मनिरपेक्ष मानवतावाद की धारणा को लाई।

मैं फिर दोबारा कहना चाहूँगा कि औद्योगिक क्रान्ति के जरिए पूँजीपति वर्ग द्वारा यूरोप में अपने-अपने देश में जो मानवतावादी विचारधारा उभार कर लाई गई थी, वह अनिवार्य रूप से एक ऐसा चिन्तन या धारणा थी जो धार्मिक नैतिक मूल्यों से ओतप्रोत सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टिकोण के विरुद्ध उठ खड़ी हुई थी। बाद में यूरोप में, मानवतावाद ने ईसाइयत के बुनियादी सुर के साथ समझौता कर लिया। फिर भी, तब तक मानवतावाद का मार्गदर्शक सिद्धान्त यांत्रिक वस्तुवाद ही रहा। अपने शुरूआती दौर में मानवतावाद चर्च और ईश्वर की धारणा का विरोध करते हुए शुरू हुआ था। इसका दृष्टिकोण था : ''जो चीज तर्कसंगत नहीं और जाँच-परख व निरीक्षण-परीक्षण के वशवर्ती नहीं या जाँचने योग्य नहीं उसे छोड़ दो।'' यह मानवतावाद धर्मनिरपेक्ष था, धार्मिक संरक्षण से पूर्णतः मुक्त था और मनुष्य था इसका केन्द्र बिन्दु। अर्थात् उस समय यूरोप में अस्तित्व में आने वाले धर्मनिरपेक्ष मानवतावाद में मनुष्य सबसे प्रधान बन कर उभरा था और उस रूप में ही इसने मानवीय नैतिक मूल्यों और आदर्शों की जय-जयकार की थी। इससे पहले, मनुष्य का पथ प्रदर्शन करने वाले सामाजिक नैतिक मूल्यों की धारणा इस थीम पर केन्द्रित थी कि सभी मनुष्यों को भगवान ने बनाया है, इसलिए भगवान के बन्दों को प्यार करना भगवान को प्यार करना है। यह प्यार मनुष्य को भगवान के और करीब ले गया। यह सामाजिक धारणा भी विश्व भाईचारे की धारणा और सभी मानवीय नैतिक मूल्यों को सहारा देती थी। दूसरी ओर, मानवतावाद की नई नींव नैतिक मूल्यों की धर्मनिरपेक्ष धारणा पर रखी हुई थी जो किसी अतिप्राकृतिक सत्ता या शक्ति को मानने से इन्कार करती है। मानवतावाद के साथ मनुष्य समस्त सोच-विचार का फोकस था। इसलिए इसने मनुष्य को हर चीज से ऊपर रखा, यहाँ तक कि ईश्वर के विचार से भी ऊपर रखा। मानवतावाद के अनुसार सामाजिक कल्याण और सामाजिक प्रगति के समस्त सोच-विचार को मानवता के हित में होना होगा। इसके विपरीत जो है उस हर चीज को छोड़ देना होगा। जो चीज तर्कसंगत नहीं और वस्तुपरक जाँच-पड़ताल व निरीक्षण-परीक्षण के वशवर्ती नहीं, उस हर चीज को छोड़ देना होगा। इसे केवल वे ही नियम-कानून, नैतिक मूल्य और नीतिशास्त्र मंजूर थे जो मानव कल्याण और सामाजिक प्रगति के परिपूरक दिखाई दिये। यूरोपीय नव-जागरण की वे धारणाएं और विचार वस्तुवादी चिन्तन और अज्ञेयवादी विचारों का एक बेजोड़ सम्मिश्रण थे।

यह धर्मनिरपेक्ष मानवतावाद चरित्र में पूर्णतः क्रान्तिकारी था और समाज में एक आमूल परिवर्तन लाया था। यूरोप में औद्योगिक क्रान्ति, असल में, इसी के पदचिन्हों पर चल कर आई थी और बड़े लम्बे-लम्बे डग भरती गई थी। व्यक्ति के विकास का दरवाजा खुला था और मशीनों के निर्माण और मशीन के नियमों को खोजने की दिशा में बड़ी तेजी से कदम आगे बढ़े थे। इतिहास में पहली बार अब जीवन की जनतांत्रिक पद्धति, संसदीय लोकतंत्र, नारी-मुक्ति और महिला मर्यादा की धारणा आगे आई थी। इससे पहले समाज में नारी का स्थान एक अभिशाप के रूप में देखे जाने का था या ज्यादा से ज्यादा उन्हें बच्चे पैदा करने की एक मशीन माना जाता था। समाज ने नारी की जरूरतों को कुछ मान्यता दी लेकिन साथ ही साथ नारियों को पाप का कुण्ड भी समझ लिया गया। फलस्वरूप नारियाँ इतनी दूर तक ही काम की मानी गई जितनी दूर तक उनकी जरूरत समझी गई। वर्ना तो उन्हें ऐसी दुराचारिणी के तौर पर देखा गया जो महज पुरुषों को बहला-फुसला कर ले गई हैं। लेकिन मानवतावादियों ने इस बात पर जोर दिया कि नर और नारी ने इकट्ठे मिलकर पूरा मानव समाज बनाया है। दुराचार या अवगुण जितने महिलाओं में हो सकते हैं उतने ही पुरुषों में भी हो सकते हैं। महिलाएं जितना नुकसान पहुँचा सकती हैं वैसे ही हालात में पुरुष भी उतना ही नुकसान पहुँचा सकते हैं। दोनों में से कोई भी नुकसान कर सकता है और उतना ही बराबर का नुकसान पहुँचा सकता है। फिर क्यों केवल महिलाओं को ही दोष देते हो और उनका दमन करते हो? बहरहाल, यह सब चर्चा करने का यहाँ मौका नहीं है कि समाज में कैसे महिलाएं पुरुषों की अधीनता में लाई गईं और कैसे पहले वाला मातृसत्तात्मक समाज टूटा तथा कैसे उसके बाद अपने स्वयं के स्वार्थ में, पुरुषों ने धार्मिक विधि-विधानों की दुहाई देकर नारी मर्यादा को पैरों तले रौंद डाला और महिलाओं को गुलामी की जंजीरों व निम्न-मनोवृत्तियों की चारदीवारी में कैद कर दिया। यह याद रखना जरूरी है कि एक लम्बा और अंधकारमय युग गुजरा जिसमें नारी को कोई अधिकार नहीं था। तब मानवतावादियों ने पहली बार नारी-मुक्ति के लिए अपनी आवाज बुलन्द की। उन्होंने नारियों को पुरुषों के अधिकारों के बराबर अधिकार दिए जाएं इसके लिए आवाज उठाई। यह केवल इसीलिए जरूरी नहीं था कि अधिकारों की बराबरी सामाजिक तौर पर महिलाओं की बनती थी बल्कि इसलिए भी कि पुरुष जाति के खुद के विकास और भरपूर समृद्धि के लिए भी इसकी बेहद जरूरत थी। मामला सिर्फ इतना ही नहीं था कि नारी की

(शेष पृष्ठ 7 पर)

धर्म, नीति-नैतिकता, धर्मनिरपेक्षता के बारे में...

(पृष्ठ 6 का शेष)

स्वतंत्रता और मुक्ति की मांग को उनके लिए एक अधिकार व न्याय के रूप में घोषणा कर दी जाए, बल्कि पुरुष को पतन से स्वयं का उद्धार करने के लिए महिलाओं को शिक्षित करने और ऊँचा उठाने की जरूरत थी। अगर सचमुच में पुरुष भी पतित होने से बचना चाहते हों और ऊपर उठना चाहते हों तो यह करना जरूरी है।

यह हमें जिस अन्य प्रश्न पर ले आता है वह है नैतिकता का प्रश्न। यह सौन्दर्यशास्त्र (एस्थैटिक्स) या सौन्दर्यबोध से सम्बन्धित है, स्त्री-पुरुष के बीच अच्छे और मधुर सम्बन्ध को लेकर है। यह मैं बताता हूँ कि जब तक स्त्री और पुरुष दोनों रूचि-संस्कृति और नैतिक मूल्यों के संदर्भ में जीवन के प्रति एक समुन्नत रुख नहीं अपनाएंगे तब तक दोनों में से कोई भी जीवन को इसकी सुन्दरताओं के साथ नहीं जी सकेगा। अत: मानवतावाद की नैतिकता ने इस विचार को बुलन्द किया कि नारी स्वतंत्रता और शिक्षा का न केवल अधिकार रखती है बल्कि इसमें एक बहुत बड़ा सामाजिक प्रयोजन भी निहित था। बुर्जुआ मानवतावादी मूल्यबोधों ने एक जमाने में वस्तुत: लोगों को इस निष्कर्ष पर पहुँचा दिया था।

मानवतावाद इस तरह नैतिक मूल्यों और नीति-नैतिकता की एक उन्नत धारणा से समाज को लैस करते हुए मानव जीवन में एक आमूल परिवर्तन लाया था। सामन्ती समाज की पुरानी धारणाओं की संकुचित चारदीवारियों से बाहर और स्थानीय सन्दर्भों एवं दृष्टिकोण तथा जातिगत भेदभाव जैसे अन्य पूर्वाग्रहों की सीमा लांघ कर बुर्जुआ मानवतावाद ने न केवल राष्ट्रवाद की धारणा और इसके सहवर्ती विचारों को ही प्रस्तुत किया था, जैसे उदाहरण के लिए, जहाँ यह नारा दिया कि 'हम सब एक ही देश के वासी हैं' वहीं साथ ही यह इस तरह के विचार को भी लाया कि 'हम विश्व-बंधुत्व से बंधे हैं।' यह विश्व भाईचारा आगे चलकर हालांकि कोई ज्यादा प्रगति नहीं कर सका क्योंकि इसकी चरम अवस्था थी राष्ट्रवाद। विश्व-भाईचारे का यह नारा अपने अमल में ज्यादा आगे नहीं बढ़ा, यह केवल एक सोच मात्र ही बन कर रह गया। जो भी थोड़ी-बहुत प्रगति यह कर पाया वह भी एक दूसरे ढंग से और बाद के दौर में हुई। बात यह है कि वे सोच-विचार और नैतिक मूल्य इस स्तर तक आगे बढ़ाये जा सकते थे। साथ ही साथ इन मूल्यबोधों की मार्गदर्शी शक्ति के तहत शुरू किए गए सामाजिक-राजनैतिक आन्दोलनों के क्रम में यूरोप के विभिन्न देशों में औद्योगिक क्रान्ति और पूँजीवाद का विकास हुआ जिसने आखिरकार सामन्ती राजतंत्र और चर्च के प्रभाव का खात्मा कर दिया। आधुनिक स्वाधीन सार्वभौम राष्ट्र और पूँजीवादी सामाजिक व्यवस्था कायम हुई। फलस्वरूप न केवल राजनैतिक क्षेत्र में जनतंत्र कायम हुआ बल्कि सामाजिक जीवन और मनुष्य की जीवन शैली पर जनतांत्रिक मूल्यबोध हावी होने लगे। हालांकि नए मूल्यबोधों के असर से समाज में यह आमूल परिवर्तन बिना किसी जोर-जबर के नहीं आया। न केवल राजतन्त्र से राजनैतिक सत्ता छीन लेने का एक संघर्ष हुआ था बल्कि पुराने विचारों, विचारधाराओं और नैतिक धारणाओं के खिलाफ भी भीषण लड़ाइयाँ छिड़ गई थी।

गौरतलब है कि यह क्रान्तिकारी सामाजिक परिवर्तन अपने आधार के तौर पर उत्पादन के साधनों पर व्यक्तिगत मालिकाने के साथ हुआ—उस व्यक्तिगत मालिकाने और व्यक्तिगत सम्पत्ति के साथ जिसको हम आज सभी सामाजिक अन्यायों की जड़ मानते हैं। असल में व्यक्तिगत मालिकाने की यही वह प्रेरक शक्ति थी जिसने लोगों को व्यक्तिगत उद्यम की ओर प्रवृत्त किया था और मुक्त होड़ पैदा की थी तथा जिसने आगे चलकर उत्पादन के साधनों और उत्पादन सम्बन्धों में एक क्रान्तिकारी बदलाव ला दिया था।

उस दौर में यह बुर्जुआ वर्ग ही था जिसने सामाजिक प्रगति के हित के झण्डे को बुलन्द किया था और उत्पादन के साधनों व उत्पादन सम्बन्धों के क्रान्तिकारी रूपान्तरण की प्रक्रिया में औद्योगिक क्रान्ति की अगुआई की थी। वही बुर्जुआ वर्ग आज घोर प्रतिक्रियावादी बन चुका है। स्वाभाविक है कि प्रगतिशील लोग उसके खिलाफ आज अपनी आवाज बुलन्द करते हैं। क्योंकि इस बुर्जुआ वर्ग ने बुर्जुआ जनवादी क्रान्ति को नेतृत्व दिया था, इसलिए नतीजे के तौर पर बुर्जुआ वर्ग का प्रभुत्व कायम हो गया था। जनतांत्रिक शासन व्यवस्था के नाम पर उन्होंने अपना वर्ग शासन कायम कर लिया था। इस प्रकार हालांकि वे न तो शोषण और वर्ग-विरोधों का खात्मा कर सके और न ही समाज में वर्गों के उन्मूलन को सफल बना सके। तब बुर्जुआ जनवादी क्रान्ति क्या परिवर्तन लाई? राजा-बादशाह की जगह एक नया वर्ग—पूँजीपति वर्ग सत्ता में आया। राजतन्त्र में यह धनी वर्ग भी एक तरह से शोषित रह चुका था। अब वह पूँजीपति वर्ग कल-कारखानों और मिलों का मालिक बना। उन्होंने जनतांत्रिक व्यवस्था चालू की और व्यक्ति-स्वतंत्रता और नारी-स्वतंत्रता को, कम से कम, कानून की नजर में तो मान्यता दी। हालांकि यह एक अलग बात है कि उसे वे कितनी दूर तक व्यवहार में उतार सके। पहले अर्थात् राजतन्त्र में अभिजात वर्ग के लिए जो विधि-विधान थे वे भूदासों के लिए जो विधि-विधान थे उनसे अलग होते थे। बुर्जुआ वर्ग ने इस भेदभाव का अन्त कर दिया। उन्होंने इस सिद्धान्त को लागू किया कि कानून की नजर में सब एक हैं। लेकिन क्या सभी बराबर हो गए और जैसे यह दावा किया गया था कि कानून की नजर में सब बराबर हैं क्या फायदों और अवसरों का सभी को असल में बराबर का हकदार बनाया गया? नहीं, असलियत में ऐसा नहीं हुआ। परन्तु फिर भी, कम से कम, कागज पर आदमी अब आदमी का गुलाम नहीं रहा। इस हद तक एक सामाजिक आन्दोलन हुआ कि एक सामाजिक अधिकार प्रदान करना पड़ा कि सभी लोग बराबर हैं और जीवन में खुशहाल होने का सभी को समान अधिकार है। औद्योगिक क्रान्ति और पूँजीवादी विकास की प्रक्रिया में नवजागरण के दौर में इस क्रान्तिकारी परिवर्तन से सोच-संस्कृति का जो रुझान पैदा हुआ था उसे हम जनवादी नैतिक मूल्य या मानवतावादी संस्कृति अर्थात् मानवतावाद के रूप में जानते हैं। इसका केन्द्र मानव था।

जो यह मानते हैं कि मानवतावाद मानव इतिहास में सदा से था वे महज भ्रम में डालते हैं। वे इस बात को गड्डमड्ड कर देते हैं कि मानव इतिहास में प्रत्येक आदर्श या विचारधारा एक विशिष्ट वैचारिक परिमण्डल होती है, एक विशेष सामाजिक व्यवस्था अर्थात् उत्पादन के विकास की एक विशेष अवस्था में भावात्मक उत्पादन या ऊपरी ढाँचे के तौर पर विकसित हुई विचारधारा का एक विशेष परिमण्डल होती है। उसके बाद इसकी भूमिका उस विशेष सामाजिक व्यवस्था को बरकरार रखने में मदद करना हो जाती है। इसलिए एक विशेष विचारधारा एक समय मनुष्य के चरित्र निर्माण और उसके गुणों को ऊपर उठाने में मदद करती है। यह पुराने समाज का आमूल परिवर्तन करने और इसकी जगह एक नई समाज-व्यवस्था कायम करने की एक शक्ति के बन्धन खोल देती हैं। लेकिन नई व्यवस्था के लागू हो जाने के बाद नये मानवीय गुण और नये मूल्यबोध सदा के लिए स्थिर नहीं रखे जा सकते। काफी समय गुजर जाने के बाद यह हलचल मचाने वाली और जुझारू भावना आखिरकार निहित स्वार्थों के साथ एकाकार हो जाने पर इसका अध:पतन शुरू हो जाता है। अगर विचारधारा सदा बदलती हुई नई-नई जरूरतों के साथ मेल रखते हुए स्वयं को लगातार बदल न सके तो वह पुरानी पड़ जाती है और अकार्यकारी हो जाती है। यह विचारधारा उस समाज में अपना प्रति-पक्ष या विरोधी-शक्ति पैदा करती है और यह विरोधी शक्ति नई सामाजिक जरूरतों के अनुसार, समाज में एक बदलाव को सफल बनाने के लिए प्रचलित विचारों और धारणाओं के साथ द्वन्द्व-संघर्ष में आ जाती है। इसके साथ ही विचारधारा, आदर्श, मूल्यबोध और रूचि-संस्कृति के पूरे ढाँचे में एक आमूल परिवर्तन होने लगता है। जिन आदर्शों, नीति-नैतिकताओं और मूल्यबोधों ने अन्याय के विरुद्ध लड़ने के लिए इन्सान को प्रेरित करके पहले कभी सामाजिक प्रगति के दौरान मदद की थी, जिन्होंने पुराने समाज को आगे बढ़ाया था और उसकी एकता और एकजुटता की रक्षा की थी—आज भी उसी पुराने चिन्तन से चिपके रहना इसके साथ अन्याय करना हो जाएगा। जो यह कोशिश करता है वह शायद ही समझे कि वह वास्तव में क्या कर रहा है और इसलिए अपने खुद के दोषों या गलतियों को किसी तरह से जायज, सही ठहराने की कोशिश में अपनी परिस्थितियों को दोष देता है। जो भी हो वह अन्याय के खिलाफ लड़ने में असमर्थ है।

हर समाज में हर समय कोई न कोई ठोस न्याय व अन्याय का तत्व होता है लेकिन, याद रखें कि न्याय या अन्याय सम्बन्धी अवधारणा हर सामाजिक व्यवस्था में बदलती जाती हैं। दूसरे वे लोग हैं जो यह दलील देना चाहते हैं कि नीति-नैतिकता, मूल्यबोध और सिद्धान्त-विद्धान्त कुछ नहीं महज बुर्जुआ पूर्वाग्रह और धार्मिक कुसंस्कार मात्र हैं। अपनी बात पर तर्क का मुलम्मा चढ़ाने के लिए जिन्हें वे वैज्ञानिक कारण कहते हैं उनका हवाला देते हैं और तुरन्त मार्क्सवादी अथोरिटियों की दुहाई देते हैं। मैं एक मार्क्सवादी हूँ लेकिन मैं उनके साथ सहमत नहीं हो सकता। मेरा उनसे सदा मतभेद रहा है और अब भी मतभेद है। नीति-नैतिकता से उनका तात्पर्य नीति-नैतिकता, आदर्शों और सिद्धान्तों की उन स्थिर व शाश्वत भावना-धारणाओं से है जो दर्शन में पूर्व निर्धारित नैतिक मूल्य (प्रायोरी वैल्यू) के तौर पर जानी जाती हैं अर्थात् किसी पूर्व निर्धारित सत्ता से उत्पन्न होने वाले मूल्यबोधों से है।

परन्तु जैसा कि मैंने पहले कहा था कि नीति-नैतिकता, आदर्शों, सिद्धान्तों और नैतिक मूल्यों की धारणाएं किसी की व्यक्तिगत जरूरत के अनुसार नहीं बल्कि हर समाज की वस्तुगत जरूरत के परिवर्तन के साथ-साथ वे लगातार बदल रही हैं। हर स्तर पर नैतिक मूल्यों का एक खास ढाँचा, न्याय-अन्याय की एक विशेष धारणा, एक खास किस्म के आदर्श और सिद्धान्त मौजूद रहते हैं। बिना किसी प्रकार की नीति-नैतिकता, मूल्यबोधों और सिद्धान्तों के कोई समाज टिक ही नहीं सकता।

अकसर इस सवाल पर हमें एक और गलतफहमी का सामना करना पड़ता है। कुछ लोग दलील देते हैं कि नीति-नैतिकता और मूल्यबोधों की धारणाओं का अगर शाश्वत आधार नहीं रहा तो समाज में कोई नीति-सिद्धान्त ही नहीं रहेगा। यह एक बिल्कुल गलत धारणा है। उल्टे, आप अगर किसी नीति, आदर्श, सिद्धान्त या विचारधारा को शाश्वत समझने की कोशिश करने लगेंगे तो ये सिद्धान्त, नीति-नैतिकता और आदर्श सब मर जाएंगे। समाज परिवर्तन के क्रम में नये समाज की जरूरतों को पूरा करने के लिए और नए समाज को प्रगति का पथ-प्रदर्शन करने के लिए नये-नये रूप में नये आदर्श पैदा होते हैं। जो नीति-नैतिकता और मूल्यबोध पुराने समाज की जरूरत को पूरा करने के लिए एक दिन पैदा हुए थे, उन सब पुरानी नीति-नैतिकताओं व मूल्यबोधों को कोई अगर शाश्वत मान लेगा और अपनी पुरानी आदतवश उनसे चिपका रहने की कोशिश करेगा तो वह उन विचारों को तो बचाने में सक्षम होगा ही नहीं बल्कि खुद को भी अध:पतन का शिकार होने से नहीं बचा सकेगा। पुरानी विचारधारा तो हर हालत में मरेगी ही और इसके अलावा क्या होगा कि जो उससे चिपके रहने की कोशिश करेंगे, वे भी आखिरकार पतन के शिकार होंगे। अत: मानवता के हित में, मृत आदर्शों और नैतिक मूल्यों को त्याग देना होता है, परिवर्तन और विकास के कारण का विश्लेषण करके नई जरूरत को समझना होता है, परिवर्तन और विकास के कारण का विश्लेषण करके नई नीति-नैतिकता और मूल्यबोधों को इन्हीं के अनुरूप विकसित करना होता है। इस तरह से इन्सान के आदर्शों, नीति-नैतिकताओं और मूल्यबोधों में लगातार उत्तरोत्तर परिवर्तन के क्रम का अनुसरण करते हुए हम मूल्यबोधों और रूचि-संस्कृति के अब तक के अपने उच्चत्तम सामाजिक स्तर पर अर्थात् वर्तमान स्तर पर पहुँचे हैं।

इसलिए धार्मिक मूल्यबोध या शाश्वत नैतिक मूल्यों को लेकर मानव कल्याण हेतु जो कुछ सोचा-विचारा गया है वह मानवतावाद नहीं है। मानवतावाद, विचारधारा का एक भिन्न परिमण्डल है जो सामन्ती समाज व्यवस्था, चर्च के प्रभुत्व और धार्मिक कट्टरपन के अंधकारमय युग से छुटकारा पा कर एक जनतांत्रिक समाज व्यवस्था, शासन की एक जनतान्त्रिक कार्य-प्रणाली और जीवन की एक जनतान्त्रिक पद्धति कायम करने की चाह से पैदा हुई थी। इसने विज्ञान, कला और मानव के ज्ञान को धार्मिक पूर्वाग्रहों, पादरी-पुरोहितों के प्रभुत्व और अत्याचारों से मुक्त किया था। इसने सामाजिक दृष्टिकोण को इस पुराने धर्मान्ध विचार से मुक्त किया था कि राजा भगवान का प्रतिनिधि है और इस तरह से इसने व्यक्ति के बेरोक-टोक विकास का दरवाजा खोल देने का प्रयास किया था। मानवतावाद वह वैचारिक या सांस्कृतिक परिमण्डल है जो एक विशेष सामाजिक अवस्था की ठोस जरूरतों को पूरा करने के लिए, सामाजिक प्रगति और विकास के लिए राजनीति, सामाजिक सिद्धान्तों, दर्शन, विज्ञान, कला, साहित्य, नीति-नैतिकता, रूचि-संस्कृति, मूल्यबोध आदि सब क्षेत्रों को लेकर एक खास आन्दोलन से पैदा हुआ था। यह औद्योगिक क्रान्ति अर्थात् पूँजीवादी क्रान्ति का परिणाम है। यह आधुनिक लोकतान्त्रिक सभ्यता की देन है। यह नवजागरण का फल है। (शेष अगले अंक में)

R.N.I. No.- 43022/85
P.R.No.-DL(C)-01/1123/2012-2014
Posting at IPMBC on 7–8 and 22–23 Fortnightly, Date of Printing : 20 Nov, 2014

मोदी की जीत की क्या कीमत है और कौन इसे चुकाएगा?

यह सर्वविदित है कि आजकल बुर्जुआ संसदीय चुनावी राजनीति में पैसा अधिकाधिक भूमिका निभा रहा है। पर यह मात्रा कितनी बड़ी है? हाल ही में 11 अक्टुबर के 'द *स्टेट्समैन'* में सुर्खियों में खबर छपी कि *मोदी के द्वारा सम्बोधित एक रैली की लागत 1.04 करोड़ रुपए आई।* यह खबर इम्फाल में 8 फरवरी 2014 को मोदी के द्वारा सम्बोधित एक रैली के खर्च के तफसीलवार पहले लिखित ब्यौरे की प्रति हाथ आने के बाद छापी गई। यह 1.04 करोड़ रुपए की इतनी बड़ी राशि नरेन्द्र मोदी की किसी सबसे बड़ी या प्रभावशाली रैलियों की नहीं थी। लोकसभा के चुनावों से पहले मोदी ने 437 बड़ी-बड़ी रैलियाँ आयोजित की थी। (इनकी संख्या की जानकारी भाजपा के अध्यक्ष अमित शाह ने दी) कुल मिलाकर मोदी ने 5827 जनसभाओं में हिस्सा लिया। इस रिपोर्ट में एक प्रश्न को स्वत: जन्म दिया कि मोदी की इम्फाल रैली में 1 करोड़ रुपये से थोड़ा ज्यादा खर्च आया तो भाजपा ने मोदी की 5827 जनसभाओं पर कितना खर्च किया और दूसरे नेताओं के द्वारा सम्बोधित रैलियों पर कितना खर्च किया?

अभी हाल ही में हुए विभिन्न विधानसभा चुनावों में हमने मोदी, आज के प्रधानमंत्री द्वारा एक पर एक रैली करते देखा। 10 अक्तूबर 2014 के *'टाइम्स ऑफ इण्डिया'* ने एक और बात की ध्यान दिलाया कि महाराष्ट्र के विधानसभा चुनाव में मुम्बई में, अलग-अलग पार्टियों ने अपने घरेलू सहायकों और ड्राइवरों की सेवाओं का भी चुनावी प्रचार कार्यों में इस्तेमाल किया और उन्हें 300 से 1000 रुपए, क्षेत्र के अनुसार (और दो वक्त का भोजन) चुनाव प्रचार कार्यों के लिए दिया जिसमें रैलियाँ, मोर्चे, जनसभाएं या मतदाता पर्चियों बांटना शामिल था। यह अदायगी घण्टे या दैनिक के आधार पर या काम के आधार पर थी।

मतदाताओं को तरह-तरह के प्रलोभन देना आज की पूँजीवादी संसदीय प्रणाली की चुनाव पद्धति का खुला रहस्य है, पर भाजपा के केन्द्रीय मंत्री नितिन गडकरी ने विधानसभा चुनाव की पूर्व संध्या पर महाराष्ट्र के लोगों के सामने इस रहस्य का पर्दाफाश करते हुए कहा कि वे चुनाव में खड़े उम्मीदवार से 'रिश्वत' लें पर वोट केवल भाजपा को ही दे। एक अखबार में मजाक उड़ाते हुए बताया कि किस तरह चुनावी उम्मीदवारों के बीच वोट खरीदने की होड़ लग गई थी। गंगाखेड़ इलाके में इस खरीद के रेट की 900 रुपये की रकम की अफवाह उड़ी, भोंसारी में रेट 1500 रुपये और औरंगाबाद में 2000 रुपये हो गया।

उपरोक्त समाचार चुनावों में इस्तेमाल विशाल धन राशि का एक छोटा हिस्सा ही दिखाते हैं पर सवाल यह है कि यह धन आया कहाँ से था? व्यापारिक घराने चुनाव के लिए विभिन्न पूँजीवादी पार्टियों को चंदे के रूप में धन देते हैं, यह जाना-माना तथ्य है और स्थापित व्यवहार है। पर वे अपनी हितरक्षा के लिए जिन पार्टी या पार्टियों को सब से उपयुक्त समझते हैं, उनको सत्ता में लाने के लिए किस हद तक जा सकते हैं, यह जनता की नजरों से पूरी तरह से छिपा रहता है। तब तो और भी ज्यादा जब काला धन इसमें इस्तेमाल होता है।

यह साफ जाहिर है कि पिछले आम चुनावों में नरेन्द्र मोदी को प्रधानमंत्री के उम्मीदवार के रूप में चुने जाने के लिए भव्य पैमाने पर पेश करने के लिए व्यापरिक कॉर्पोरेट घरानों ने अपनी तिजोरियाँ अप्रत्याशित रूप से खोल दीं ताकि वे बड़ी-बड़ी रैलियों को सम्बोधित करें जहाँ पर भरपूर जन 'समर्थन' मिलता हुआ दिखाई दे। इसके लिए कितनी विशाल धनराशि का प्रयोग हुआ, किस तरह से चुनाव प्रचार अभियान चलाया या जुआ खेला गया, ताकि मोदी के अतीत को छिपाया रखा जा सके और मोदी की स्वीकार्यता न केवल अपनी पार्टी में बल्कि आम जनता में बढ़ाई जा सके। इसलिए यह पूरी तरह से कार्पोरेट घरानों के द्वारा प्रायोजित चुनावी अभियान था जिसने मोदी को सत्ता पर काबिज करवा दिया। पर क्या कार्पोरेट घरानों ने मोदी के प्यार में इतना धन फूंका है? उन्होंने ऐसा इसलिए किया है कि उन्हें लगा कि प्रधानमंत्री के रूप में मोदी उनके हितों की रक्षा सर्वोत्तम ढंग से कर सकते हैं और वे अपना पैसा पाई-पाई वसूलना चाहते हैं, या हम यह कहें कि वे अपने निवेश को लाभ सहित वापिस हासिल करना चाहते हैं।

श्री मोदी ने बड़े व्यापारी वर्ग परस्त और ज्यादा सुधारों का वायदा किया है जिनमें और भी निजीकरण करना शामिल है। अब मोदी सरकार बड़े व्यापारियों के पक्ष में और गरीबों के पक्ष में नीतियाँ अपनाने का दावा करती है। पर यह कैसे संभव हो सकता है? ज्यों ही मोदी सरकार सत्ता में आई इसने राजस्व घाटे के बहाने रेल के किराए बढ़ा दिए–यात्री भाड़ा 14.2% और माल भाड़ा 6.3%, मासिक टिकट रेट दुगुना कर दिया और तत्काल के अन्तर्गत क्रमबद्ध रूप से किराया बढ़ा दिया। 9 लाख करोड़ रुपये का यह राजस्व घाटा महाराष्ट्र और गुजरात के बीच प्रस्तावित बुलेट ट्रेन के लिए बाधक नही बना, जिसे केवल व्यपारी या धनी व्यक्ति ही इस्तेमाल कर सकेंगे। रेलवे में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को आमंत्रित किया गया है। क्या ये नीतियाँ किसी भी कल्पना में निर्धन-हिताये कही जा सकती हैं? यहाँ तक कि बेहतर यात्री सुविधाएं जिनका वायदा किया गया था, कहीं भी दिखाई नहीं देतीं। जबकि यह तो महज शुरूआत है।

एक पर एक उठाये कदमो के जरिये बिना किसी देरी के मोदी ने व्यापारी-परस्त सुधारों का वादा पूरा करने का काम शुरू कर दिया है। इसी तरह मोदी सरकार ने दवाइयों की कीमतों को अनियन्त्रित कर दिया है। कुत्ता काटने की दवाई एण्टी-रैबीज जो 2500 रुपये की आती थी 7500 रुपये की कर दी गई। कैंसर की एक खास दवाई जो 8500 रुपये की आती थी, वह 1 लाख रुपए की कर दी गई। यह एक अलग बात है कि पहले भी कुछ दवाइयों के दामों पर प्रतिबंध हटाए गए थे, पर अब दवाइयों के दामों पर नियन्त्रण हटने के कारण लोगों को मुनाफाखोर कार्पोरेटों की दया पर छोड़ दिया गया है। यह तरीका किस तरह से निर्धन हिताय हो सकता है, जो उनके स्वास्थ्य और आर्थिक जीवन पर कहर ढा देने वाला हमला है? डीजल की कीमतों को निजी और सरकारी तेल कम्पनियों को फायदा पहुँचाने के लिए अनियंत्रित कर दिया गया है ताकि भविष्य में उनकी कीमत बेतहाशा बढ़ सके। इसके साथ ही प्राकृतिक गैस की कीमत में 33% की अप्रत्याशित वृद्धि घोषित कर दी गई है जो सिर्फ एक पहली किश्त है। ये सब उपाय यातायात किराये, बिजली दर सहित अनिवार्य चीजों की कीमतें बढ़ा देंगे। साथ ही मोदी सरकार ने मनरेगा में जबरदस्त कटौती कर दी है। 100 दिनों का रोजगार केवल निर्धनतम 200 जिलों में ही दिया जाएगा। ये चन्द उपाय सिर्फ आने वाले सुधारों की एक झलक दिखलाते हैं। यहाँ तक कि सुधारपरस्त उपायें के तौर पर सरकारी क्षेत्र में विनिवेश, सुरक्षा और बीमा में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश लाने, श्रम कानून में संशोधन करने की बात कही गई है जिससे श्रमिकों के लोकतान्त्रिक हितों का हनन करने, बची-खुची सामूहिक समझौता प्रणाली को खत्म करने का लक्ष्य है जिनका कार्पोरेट घरानों ने खुले मन से स्वागत किया है। क्या इसमें कोई हैरानी की बात है कि कार्पोरेट घराने मोदी को इतना प्यार करते हैं। कितनी कुशलता से वे उनके रास्ते की रुकावटें दूर करते हैं और बिना किसी सरकारी हस्तक्षेप के या बिना किसी तर्कसंगत प्रतिबंध के आसानी से अधिक सुपर लाभ करवाने के लिए उनके लिए पलकें बिछाते हैं?

यह सवाल उठता है: जब पहले ही आर्थिक सुधारों (सहवर्ती निजीकरण सहित) ने एक ऐसी स्थिति पैदा कर दी है जहाँ कुछ सुविधाप्राप्त लोगों, मैनेजरों की नौकरियों में लगे हुए लोगों के बहुत छोटे से अंश को कोर्पोरेट घरानों की बढ़ती अकूत धन-सम्पदा और मुनाफे में से कुछ टुकड़े मिल जाते हैं, पर मेहनतकश विशाल जनसमुदाय की किस्मत में कष्ट ही लिखे हुए हैं, जिसके कारण बड़े पैमाने पर किसानों ने आत्महत्याएं की हैं और सामाजिक संघर्ष बढ़ गए हैं। ऐसे हालात में गरीबों के लिए कैसे खुशहाल दिन होंगे। जैसा कि बड़े व्यापारियों और उद्योगपतियों की भलाई के लिए अपनाए गए सुधार दिखलाना चाहते हैं? असल में कार्पोरेट घरानों के लिए ''अच्छे दिन'' मोदी सरकार के अन्तर्गत आ रहे हैं। इसीलिए उन्होंने मोदी को सत्तासीन करने के लिए पैसा लगाया था। पर मेहनतकश जनता के लिए काले दिन आ रहे हैं! वे ही कीमत चुकाते हैं। वे कितनी कीमत चुकाएंगे! जब तक उन्हें सच्चाई समझ नहीं आ जाती और वे अपना रास्ता खुद पहचान नहीं लेते हैं।

वामपंथी दलों की बैठक में लिया जन अभियान चलाने का फैसला

रोहतक (हरियाणा) : 13 नवम्बर को वामपंथी पार्टियों की संयुक्त मीटिंग हुई जिसमें राज्य व केन्द्र की भाजपा सरकारों की जनविरोधी नीतियों के खिलाफ आगामी 11 से 17 दिसम्बर के दौरान प्रदेश भर में जन अभियान छेड़ने का निर्णय लिया गया। माकपा राजय कार्यालय में कॉ. सत्यवान की अध्यक्षता में हुई बैठक में माकपा की ओर से कॉ. इन्द्रजीत सिंह व कॉ. सुरेन्द्र सिंह, भाकपा की ओर से कॉ. दरयाव सिंह कश्यप व आजाद सिंह और एसयूसीआई(कम्युनिस्ट) की ओर से कॉ. सत्यवान व अनूप सिंह ने हिस्सा लिया।

जिन10 मुख्य मुद्दों पर आन्दोलन चलाया जाना है उनमें मनरेगा को कमजोर करने के कदमों के खिलाफ, महंगाई को रोकने व दवाइयों की कीमतों में बेतहाशा बढ़ोतरी पर नियंत्रण पाने, बीमा क्षेत्र में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश रुकवाने, काले धन को उजागर करने, स्वामीनाथन आयोग की सिफारिशों के अनुरूप फसलों का न्यूनतम समर्थन मूल्य व लाभकारी मूल्य सुनिश्चित करवाने, भूमि अधिग्रहण कानून में प्रतिगामी संशोधन करने के खिलाफ, शिक्षा, मीडिया एवं राजकीय संस्थानों में आरएसएस और साम्प्रदायिक ताकतों की घुसपैठ रोकने, 'लव जिहाद' जैसा मनघडंत मिथ्याडम्बर और अल्पसंख्यकों के अधिकारों पर हमले रोकने, महिलाओं के खिलाफ हिंसा व लैंगिग भेदभाव, दलितों से जातिगत भेदभाव बंद करने आदि शामिल हैं।

मीटिंग में हरियाणा सरकार द्वारा उन निर्णयों की समीक्षा करने के निर्णय की आलोचना की गई जो 1 नवम्बर से लागू होने थे। इन निर्णयों में वृद्धावस्था पेन्शन 1500 रुपये महीना करने, न्यूनतम वेतन वृद्धि, कर्मचारियों की वेतन विसंगतियां दूर करना आदि शामिल है। मीटिंग में प्रस्ताव पारित करके हाल ही में पलवल के हथिन में साम्प्रदायिक हिंसा फैलाने वाले तत्वों की कड़ी भर्त्सना करते हुए उनके खिलाफ कड़ी कानूनी कार्रवाई करने की मांग की गई। वामपंथी दलों की संयुक्त मीटिंग में विधानसभा स्पीकर समेत दर्जनों भाजपा नेताओं व विधायकों के उस कृत्य की कड़ी निन्दा की गई जिसमें उन्होंने सिरसा स्थित डेरा में जाकर भाजपा को चुनाव में दिये गये समर्थन के लिए धन्यवाद किया है। बरवाला के सतलोक आश्रम में चल रही तनावपूर्ण स्थिति पर वामपंथी दलों ने कहा है कि कानून को अपना काम करने दिया जाना चाहिए और सभी पक्षों से अपील की कि न्यायालय में पेशी के सवाल को भावनात्मक मुद्दा न बनायें और स्थिति को सामान्य बनाने में सहयोग करें। मीटिंग में अखिल भारतीय ट्रेड यूनियनों के आह्वान पर 5 दिसम्बर को ट्रेड यूनियन अधिकारों में कटौती करने के खिलाफ होने वाली विरोध कार्रवाइयों का पुरजोर समर्थन किया गया।

महिलाओं पर अत्याचार ...

(पृष्ठ 1 का शेष)

कर नीलम पार्क तक रोष प्रदर्शन किया। राष्ट्रीय महिला आयोग द्वारा वेश्यावृति को कानूनी बनायेजाने के सुझाव के विरोध में में एक प्रसताव पारित किया गया। दूसरा प्रस्ताव दिल्ली हाई कोर्ट द्वारा रजानिवृत महिला के साथ दुष्कर्म को अपराध न मानते हुए जो फैसला दिया गया उसे महिला संगठन के दबाव में स्थगित किये जाने का स्वागत करते हुए पारित किया गया। वहां हुई सभा उपरांत महिला प्रतिनिधि मण्डल ने हजारों हस्ताक्षरयुक्त ज्ञापन मुख्यमंत्री को सौंपा।

विभिन्न जिलों से आई महिलाओं की सभा को मुख्य वक्ता संगठन की दिल्ली राज्य सचिव श्रीमती रितु कौशिक, गुना जिला अध्यक्ष श्रीमती संगीता आरबी, सागर से पूजा चौरसिया, ग्वालियर जिला अध्यक्ष आभा भुवरकर, भोपाल प्रभारी जॉली सरकार, जबलपुर प्रभारी चंद्रा पात्रा और श्रमिक नेता गोविंद सिंह आसिवाल ने सम्बोधित किया।

सभा की अध्यक्षता संगठन की म.प्र. संयोजिका श्रीमती रचना अग्रवाल ने की।

सोशलिस्ट यूनिटी सेन्टर ऑफ इण्डिया (कम्युनिस्ट) की ओर से कॉ. सत्यवान द्वारा 3ए/38, डब्ल्यू.ई.ए., करोल बाग, नई दिल्ली-5 से संपादित व प्रकाशित तथा परम्परा प्रिंटिंग प्रेस, बी-70/83, इण्डस्ट्रियल एरिया, लॉरेंस रोड, दिल्ली-35 से मुद्रित, दूरभाष:011-25726631, Email: sarvaharadrishtikon@gmail.com; sarvaharadrishtikon@yahoo.com